घोर दक्षिणपंथी एवं नव फासीवादी उभार

द्वितीय विश्व युद्ध में फासीवाद की पराजय के बाद से लम्बे समय तक घोर दक्षिणपंथी एवं फासीवादी राजनीति दुनिया के सभी देशों में हाशिये पर चली गयी। इसका एक बड़ा एवं महत्वपूर्ण कारण यह था कि पूरी दुनिया के जनमानस में फासीवाद के प्रति घोर नफरत पैदा हो गयी थी और समाजवाद की नैतिक श्रेष्ठता स्थापित हो गयी थी। साथ ही, दूसरे विश्व युद्ध में हुए ध्वंस के बाद पुनर्निमाण की जरूरत ने वैश्विक पूंजीवाद को गति प्रदान कर दी। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के ढाई दशक में पूंजीवादी दुनिया को किसी गहरे आर्थिक संकट का शिकार नहीं होना पड़ा। इस दौर में पूंजीवादी दुनिया अपने लोक कल्याणकारी राज्य के मॉडल के तहत समाजवाद की चुनौती का सामना करने में सक्षम रही। इसलिए, घोर दक्षिणपंथी एवं फासीवादी राजनीति को परायी चीज के बतौर प्रस्तुत करने की गुंजाइश इस दौर में थी। कई देशों में तो इस तरह की राजनीति पर कानूनी रोक तक लगी हुई थी। इस दौर में ऐसी जितनी भी प्रवृत्तियां थीं, वे एक तो काफी क्षीण थीं, साथ ही वे 20-30 के दशक के नाजीवाद-फासीवाद की विरासत को स्वीकार करने से बचती थी।

1970 के बाद से पूंजीवादी दुनिया की स्थिति बदलनी शुरू हुई। आर्थिक विकास की रफ्तार धीमी पड़ने लगी। मुनाफे को बरकरार रखने में पुरानी ब्रेटन वुड्स व्यवस्था बाधा बनने लगी। समाजवाद की वक्ती पराजय ने पूंजीपति वर्ग के लिए लोक कल्याणकारी राज्य की जरूरत समाप्त कर दी। ऐसे समय में अमरीकी एवं अंग्रेज साम्राज्यवादियों के नेतृत्व में साम्राज्यवाद-पूंजीवाद ने भिन्न तरह की नीतियां अपनानी शुरू कर दी। पूंजीपति वर्ग द्वारा नवउदारवादी नीति कही जाने वाली इन नीतियों के तहत लोक कल्याणकारी राज्य को तिलांजलि दे दी गयी। शिक्षा, स्वास्थ्य आदि की जिम्मेदारी से राज्य ने अपने हाथ खींच लिए और इन्हें बाजार के हवाले कर दिया गया। स्थायी नौकरियों को अर्थव्यवस्था के विकास में बाधक बताया जाने लगा और ठेका-कैजुअल की प्रथा को बढ़ावा दिया जाने लगा। मजदूर वर्ग की सामूहिक सौदेबाजी की ताकत को तरह-तरह से तोड़ा जाने लगा। मजदूर वर्ग को मिलने वाले हर तरह के कानूनी संरक्षण को समाप्त किया जाने लगा। मजदूर-मेहनतकशों की लूट बढ़ा कर उनकी जीवन स्थिति और कार्यस्थिति को विकराल बनाया गया। इस सब की वजह से जनता के भीतर व्यवस्था के प्रति अविश्वास एवं आक्रोश संचित होने लगा। इस स्थिति का लाभ उठाने के लिए घोर दक्षिणपंथी पार्टियों ने काल्पनिक दुश्मन गढ़े और जनता के किसी एक कमजोर हिस्से के खिलाफ बहुसंख्यक जनता को भड़काकर अपना आधार विस्तारित करना शुरू कर दिया। अमेरिका के ट्विन टावर पर हुए हमले के बाद पूरी दुनिया में सरकारों द्वारा आतंकवाद के खिलाफ बनाए गये जबरदस्त माहौल ने घोर दक्षिणपंथी पार्टियों को तेजी से आगे बढ़ने का मौका दिया। 2007-08 के विश्व आर्थिक संकट के बाद तो अब स्थिति यह है कि कई देशों में घोर दक्षिणपंथी एवं नव फासीवादी पार्टियां या तो सत्ता में भागीदारी कर रही हैं या इसके काफी करीब हैं। दुनिया तेजी से उस दिशा में बढ़ती दीख रही है, जहां दो में से कोई एक ही समाधान संभव होगा-या तो फासीवाद या समाजवाद।

दुनिया की जनता नाजीवाद-फासीवाद का आतंक एक बार झेल चुकी है। अपने समय में हिटलर-मुसोलिनी का नाजीवाद-फासीवाद इतनी मजबूत स्थिति हासिल कर चुका था कि फासीवाद की विश्वव्यापी विजय कइयों को अवश्यम्भावी लगती थी। लेकिन कम्युनिस्ट इंटरनेशनल और स्तालिन के कुशल नेतृत्व में दुनिया की जनता ने फासीवाद को धूल चटाई। आज जब फिर से नव फासीवादी आंदोलन मजबूत हो रहा है एवं फासीवाद का खतरा सामने दिखाई दे रहा है तो इसके खिलाफ संघर्ष कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों का एक प्रमुख कार्यभार बन जाता है। इस कार्यभार को अंजाम देने में कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की सातवीं कांग्रेस (1935) द्वारा किया गया फासीवाद का विश्लेषण काफी शिक्षाप्रद है।

इस लेख में सबसे पहले हम कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के नेता ज्यॉर्जी दिमित्रोव के वक्तव्यों के माध्यम से फासीवाद के संबंध में कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की समझ को प्रस्तुत कर रहे हैं। इसके बाद वर्तमान घोर दक्षिणपंथी एवं नव फासीवादी उभार का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया जायेगा और इससे लड़ने के गैर क्रांतिकारी एवं क्रांतिकारी रास्ते पर बात की जायेगी।

I

फासीवाद के संबंध में कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की समझ

> "अत्यंत गंभीर आर्थिक संकट के पैदा होने के साथ, पूंजीवाद के आम संकट के अत्यंत उग्र हो जाने और मेहनतकश जनता के व्यापक हिस्सों में क्रांतिकारी चेतना का संचार होने के साथ, फासिज्म ने व्यापक हमला शुरू कर दिया है। शासक पूंजीपति वर्ग मेहनतकशों के अधिकारों के खिलाफ लूट-खसोट के असाधारण कदम उठाने, लूट-पाट के साम्राज्यवादी युद्ध की तैयारी करने, सोवियत संघ पर हमला करने, चीन को गुलाम बनाने और उसका बंटवारा करने, तथा इन सारे तरीकों से क्रांति को रोकने के उद्देश्य से फासिज्म में अपना मोक्ष ढूंढने का अधिकाधिक प्रयास कर रहा है।

साम्राज्यवादी हलके संकट का सारा बोझ मेहनतकशों के कंधों पर डाल देने की कोशिश कर रहे हैं। इसी कारण उन्हें फासिज्म की जरूरत है।

वे कमजोर राष्ट्रों को गुलाम बनाकर, औपनिवेशिक उत्पीड़न उग्र करके तथा युद्ध के जरिये विश्व का दुबारा नये सिरे से बंटवारा करके मंडियों की समस्या हल करने की कोशिश कर रहे हैं। इसी कारण उन्हें फासीवाद की जरूरत है।

वे मजदूरों और किसानों के क्रांतिकारी आंदोलन को ध्वस्त करके तथा विश्व सर्वहारा की रक्षापंक्ति-सोवियत संघ-पर सैनिक आक्रमण करके क्रांति की शक्तियों के बढ़ाव को आगे बढ़ कर रोकने की कोशिश कर रहे हैं। इसी कारण उन्हें फासिज्म की जरूरत है।

अनेक देशों में, खासतौर पर जरमनी में, इसके पहले कि आम जनता क्रांति की ओर निर्णायक रूप से मुड़ सके, इन साम्राज्यवादी हलकों ने सर्वहारा को पराजित करने तथा फासिस्ट तानाशाही की स्थापना करने में सफलता पा ली है।

किन्तु फासिज्म की विजय की यह विशेषता है कि यह विजय एक ओर सामाजिक जनवाद की फूटपरस्त नीति के कारण, पूंजीपति वर्ग के साथ उसके वर्ग सहयोग के कारण, असंगठित और पंगु सर्वहारा की कमजोरी की सूचक है तथा दूसरी ओर मजदूर वर्ग की संयुक्त संघर्ष की कल्पना से भयभीत, क्रांति से भयभीत उस पूंजीपति वर्ग की कमजोरी की भी द्योतक है जो अब पूंजीवादी जनवाद और संसदवाद के पुराने तरीकों से आम जनता पर अपनी तानाशाही बरकरार रखने की स्थिति में नहीं रह गया है।"(पृष्ठ-17-18, फासीवाद के खिलाफ जनमोर्चा, ज्यॉर्जी दिमित्रोव, समकालीन प्रकाशन, 2003)

1920-30 के दशकों में पूंजीवादी दुनिया भीषण आर्थिक संकट का शिकार हो गयी थी। भयंकर बेरोजगारी पूंजीवादी दुनिया की आम परिघटना बन गयी। मजदूर मेहनतकशों के असंतोष और आक्रोश ने ऊंचा स्तर प्राप्त कर लिया। पूंजीपति वर्ग के लिए पूंजी संचय करना आसान नहीं रह गया। ऐसी स्थिति में पूंजीवादी जनवाद और संसदवाद पूंजीपति वर्ग की शासन व्यवस्था में बाधा बनने लगा। इस स्थिति में इटली, जर्मनी आदि देशों में पूंजीपति वर्ग ने पूंजीवादी जनवाद और संसदवाद के बजाय फासीवाद को अपने शासन के रूप में चुना। फासीवाद के माध्यम से पूंजीपति वर्ग ने मजदूर-मेहनतकशों पर अपने संकट का बोझ स्थानांतरित कर दिया। अपनी दमन की मशीनरी को मजबूत करके तथा मजदूर मेहनतकश जनता को फासीवादी राजनीति पर खड़ा करके पूंजीपति वर्ग ने संकट के क्रांतिकारी समाधान की संभावना को समाप्त कर दिया। फासीवादी राज्य के दम पर पूंजीपति वर्ग ने युद्धोन्माद भड़काया और औपनिवेशिक कब्जे और लूट को बढ़ाने की कार्यवाही की। उस जमाने में सोवियत संघ का समाजवाद सभी साम्राज्यवादियों और पूंजीवादियों की आंखों में खटकता था। साम्राज्यवाद ने फासीवाद के जरिये समाजवाद की हत्या करने के भी मंसूबे पाले।

फासीवाद का पूंजीवाद के संकटों के साथ स्पष्ट संबंध होता है। पूंजीवादी संकट अपने आप में ही मजदूर मेहनतकशों के जीवन को दूभर करते हैं। साथ ही फासीवाद को पैदा करके यह जनता की समस्याओं को और भी विकराल बना सकते हैं। इसलिए, फासीवाद से मुक्ति के लिए संघर्ष और पूंजीवादी संकटों से मुक्ति के लिए संघर्ष आपस में जुड़ जाते हैं।

फासीवाद के वर्ग चरित्र के बारे में दिमित्रोव कहते हैं :

"साथियों, कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की कार्यकारिणी समिति के तेरहवें पूर्णाधिवेशन में सत्तारूढ़ फासिज्म का यह ठीक ही वर्णन किया गया था कि वह वित्तीय पूंजी के सबसे अधिक प्रतिक्रियावादी, सबसे अधिक अंधराष्ट्रवादी और सबसे अधिक साम्राज्यवादी तत्वों की एक खुली आतंकवादी तानाशाही है।

... ...

फासिज्म राज्यसत्ता का ऐसा रूप नहीं है जो "सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग-दोनों वर्गों से ऊपर खड़ा होता हो" जैसा कि औटो बॉवेर ने दावा किया है, न ही यह "उस निम्न पूंजीपति वर्ग की बगावत है जिसने राज्य तंत्र पर कब्जा कर लिया है।" जैसा कि ब्रिटिश सोशलिस्ट ब्रेल्सफोर्ड घोषित करते हैं। नहीं, फासिज्म ऐसी सत्ता नहीं है जो कि वर्ग से ऊपर हो, न ही वित्तीय पूंजी पर निम्न पूंजीपति वर्ग या लुम्पन-सर्वहारा की सत्ता है। फासिज्म स्वयं वित्तीय पूंजी की ही सत्ता है। यह मजदूर वर्ग तथा किसानों और बुद्धिजीवियों के क्रांतिकारी हिस्से के खिलाफ आतंकवादी प्रतिशोध का संगठन है। विदेश नीति में फासिज्म धक्केशाही का सबसे पाशविक रूप है, जो अन्य राष्ट्रों के प्रति जघन्य घृणा फैलाता है।

... ...

फासिज्म का विकास तथा स्वयं फासिस्ट तानाशाही हर देश विशेष की ऐतिहासिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों और राष्ट्रीय विलक्षणताओं तथा उसकी अंतर्राष्ट्रीय स्थिति के अनुसार विभिन्न देशों में अलग-अलग रूप धारण करती है। कुछ देशों में, खासतौर पर उनमें जहां फासिज्म के पास व्यापक जनाधार नहीं है तथा जहां स्वयं फासिज्म पूंजीपति वर्ग के खेमे के भीतर विभिन्न समूहों के बीच संघर्ष अधिक उग्र है, फासिज्म फौरन संसद को समाप्त करने का साहस नहीं करता, बल्कि अन्य पूंजीवादी पार्टियों साथ ही सामाजिक जनवादी पार्टियों को किंचित वैधता बनाये रखने देता है। अन्य देशों में, जहां शासक पूंजीपति वर्ग को शीघ्र ही क्रांति का विस्फोट हो जाने का डर रहता है, फासिज्म या तो फौरन ही या सारी प्रतिद्वंद्वी पार्टियों और समूहों के खिलाफ आतंकशाही और उसका उत्पीड़न तेज करके अपना निरंकुश राजनीतिक एकाधिकार कायम कर लेता है। जब फासिज्म की स्थिति खास तौर पर संगीन होती है, तो अपना आधार विस्तृत करने की कोशिश में, और अपने वर्ग चरित्र को बदले बगैर संसदवाद के भौंड़े दिखावे के साथ खुली आतंकवादी तानाशाही को संयुक्त करने में, यह चीज फासिज्म के आड़े नहीं आती।

फासिज्म का सत्ता में आना एक पूंजीवादी सरकार से दूसरी सरकार का साधारण उत्तराधिकार नहीं, बल्कि पूंजीपति वर्ग के प्रभुत्व के एक राजकीय रूप-पूंजीवादी जनवाद-के स्थान पर एक अन्य रूप-खुली आतंकवादी तानाशाही-की स्थापना है। इस अंतर को नजरअंदाज कर देना बहुत बड़ी गलती होगी, ऐसी गलती जो फासिस्टों द्वारा सत्ता के अपहरण के खतरे के

खिलाफ संघर्ष के लिए क्रांतिकारी सर्वहारा द्वारा नगरों और ग्रामों के मेहनतकशों के व्यापकतम हिस्सों के लामबंद किये जाने तथा स्वयं पूंजीपति वर्ग के खेमे में मौजूद अंतर्विरोधों से लाभ उठाये जाने के काम में बाधक बन सकती है। लेकिन फासिस्ट तानाशाही की स्थापना के लिए, पूंजीवादी जनवादी देशों में इस समय पूंजीपति वर्ग जो अधिकाधिक प्रतिक्रियावादी कदम उठा रहे हैं, उनके महत्व को कम करके आंकना भी उतनी ही गंभीर और खतरनाक गलती होगी। ये ऐसे कदम होते हैं जो मेहनतकश जनता के जनवादी अधिकारों का दमन करते हैं, संसद के अधिकारों को झुठलाते और उनमें कटौती करते हैं तथा क्रांतिकारी आंदोलन के दमन को तीव्र बनाते हैं।

साथियो, फासिज्म की सत्ता में आने की कल्पना ऐसे सरलीकृत और निर्विघ्न रूप से नहीं की जानी चाहिए मानो वित्तीय पूंजी की किसी एक समिति ने एक खास तारीख को फासिस्ट तानाशाही कायम करने का फैसला कर लिया हो। हकीकत में फासिज्म आम तौर पर पुरानी पूंजीवादी पार्टियों के या उनके किसी एक निश्चित तबके के खिलाफ आपसी और कभी-कभी घनघोर संघर्ष के दौरान, स्वयं फासिस्ट खेमे के भीतर के भी संघर्ष के दौरान सत्ता में आता है-ऐसा संघर्ष जिसके फलस्वरूप कभी-कभी सशस्त्र मुठभेड़ों की भी नौबत आ जाती है, जैसा कि हमने जरमनी, ऑस्ट्रिया और अन्य देशों के मामले में देखा है। बहरहाल, इस सबके कारण इस तथ्य का महत्व कम नहीं होता कि फासिस्ट तानाशाही की स्थापना के पहले पूंजीवादी सरकारें आम तौर पर अनेक आरंभिक दौरों से होकर गुजरती है और अनेक ऐसे प्रतिक्रियावादी कदम उठाती है, जो फासिज्म के सत्तारूढ़ होने में प्रत्यक्षतः आसानी पैदा करते हैं। इन आरंभिक दौरों में जो कोई पूंजीपति वर्ग के इन प्रतिक्रियावादी कदमों और फासिज्म की वृद्धि से नहीं जूझता, वह फासिज्म की विजय को रोकने की स्थिति में नहीं होता, बल्कि उल्टे उस विजय को सुगम बनाता है।

सामाजिक जनवादी नेताओं ने फासिज्म के असली वर्ग स्वरूप के प्रति भ्रम पैदा किया और उसे जनता से छिपाया तथा पूंजीपति वर्ग के अधिकाधिक प्रतिक्रियावादी कदमों के खिलाफ संघर्ष करने के लिए उनका आह्वान नहीं किया। उन पर इस बात की भारी ऐतिहासिक जिम्मेदारी है कि फासिस्ट हमले के एक निर्णायक क्षण में जरमनी और अन्य अनेक फासिस्ट देशों के मेहनतकशों का एक बड़ा हिस्सा फासिज्म में छिपे अपने सबसे दुष्ट शत्रु-खून के प्यासे महा लोलुप वित्तीय पूंजी को पहचान पाने में असमर्थ रहा तथा यह कि ये जनसमूह उसका प्रतिरोध करने के लिए तैयार नहीं थे।

आम जनता पर फासिज्म के असर का स्रोत क्या है? फासिज्म आम जनता को आकृष्ट करने में इसलिए सफल होता है क्योंकि वह उनकी सबसे फौरी जरूरतों और मांगों को लफ्फाजी के साथ पेश करता है। फासिज्म न तो सिर्फ आम जनता में गहरे पैठे हुए पूर्वाग्रहों को प्रज्वलित करता है, बल्कि आम जनता की उदात्त भावनाओं को, उनके न्यायबोध को और कभी-कभी तो उनकी क्रांतिकारी परम्पराओं को भी उकसाता है। जरमनी फासिस्ट-बड़े पूंजीपतियों के वे पिट्ठू और समाजवाद के जानी दुश्मन-स्वयं को जनता के सामने "समाजवादियों" के रूप में क्यों पेश करते हैं, और अपने सत्तारूढ़ होने का वर्णन "क्रांति" के रूप में क्यों करते हैं, इसका कारण यह है कि जर्मनी की मेहनतकश जनता के हृदयों में क्रांति के प्रति जो आस्था तथा समाजवाद की जो चाह है, वे इसका इस्तेमाल करने की कोशिश करते हैं।

फासिज्म चरम साम्राज्यवादियों के हित में काम करता है, मगर वह जनता के सम्मुख स्वयं को अन्याय के शिकार राष्ट्र के हित रक्षक के बाने में पेश करता है तथा आहत राष्ट्रीय भावनाओं को सहलाता है जैसा कि जरमन फासिज्म ने उस समय किया जब उसने "वर्साई संधि मुर्दाबाद" के नारे में आम निम्न पूंजीपतियों का समर्थन प्राप्त किया।

फासिज्म का लक्ष्य होता है आम जनता का अधिक से अधिक निरंकुश शोषण करना, मगर वह अधिक से अधिक धूर्ततापूर्ण पूंजीवाद विरोधी लफ्फाजी के साथ उनके पास जाता है तथा इसमें वह लुटेरे पूंजीपति वर्ग, बैंकों, ट्रस्टों और वित्तीय कुबेरों के प्रति मेहनतकशों की गहरी नफरत से फायदा उठाता है और ऐसे नारे बुलंद करता है जो राजनीतिक दृष्टि से अपरिपक्व जनता के लिए फिलहाल सबसे मोहक होते हैं। जरमनी में-"जन कल्याण व्यक्ति के कल्याण से बढ़कर है", इटली में-"हमारा राज्य पूंजीवादी नहीं बल्कि एक निगमित (कारपोरेट) राज्य है", जापान में-"शोषणविहीन जापान के लिए", संयुक्त राज्य अमेरिका में- "दौलत का बंटवारा करो" आदि नारे इसकी मिसालें हैं।

फासिज्म जनता को सबसे भ्रष्ट और अर्थलोलुप तत्वों की मर्जी के हवाले करता है, मगर उनके सामने ऐसी सरकार की मांग लेकर आता है जो "ईमानदार और कभी भ्रष्ट न होने वाली सरकार" हो, पूंजीवादी-जनवादी सरकारों के प्रति जनता के तमाम भ्रमों के टूटने का लाभ उठाता हुआ फासिज्म मक्कारी के साथ भ्रष्टाचार (मसलन जरमन में बार्मट और स्क्लारेक के मामले, फ्रांस में स्ताविस्की का मामला और दूसरे बहुत से मामलों) की भर्त्सना करता है।

यह पूंजीपति वर्ग के सबसे प्रतिक्रियावादी हमलों के हितों में ही होता है, कि फासिज्म उस हताश आम जनता को बीच में ही रोक लेता है जो पुरानी पूंजीवादी पार्टियों को छोड़ चलती है। परन्तु वह इस आम जनता को पूंजीवादी सरकारों पर अपने जबर्दस्त हमलों तथा पुरानी पूंजीवादी पार्टियों के विरुद्ध अपने अत्यन्त कट्टर रुख के जरिए प्रभावित करता है।

अपने नकचढ़ेपन और ढोंग के मामले में पूंजीवादी प्रतिक्रियावाद की दूसरी तमाम किस्मों को मात देते हुए फासिज्म हर देश की राष्ट्रीय विलक्षणताओं के अनुरूप तथा एक ही देश के विभिन्न सामाजिक स्तरों की भी विलक्षणताओं के अनुरूप अपनी लफ्फाजी को ढाल लेता है। और निम्न पूंजीपति वर्ग के व्यापक हिस्से और मजदूरों का भी एक तबका, जो अभाव, बेरोजगारी और अपने अस्तित्व की असुरक्षा के कारण हताश हो चुका होता है, फासिज्म की सामाजिक और अंधराष्ट्रवादी लफ्फाजी का शिकार बन जाते हैं।

फासिज्म सर्वहारा के क्रांतिकारी आंदोलन पर, उस जनसमूह पर जो विक्षोभ की अवस्था में हो, हमला करने वाली पार्टी के रूप में सत्ता में आता है। फिर भी वह "समूचे राष्ट्र" की ओर से तथा राष्ट्र की "मुक्ति के लिए पूंजीपति वर्ग के

खिलाफ क्रांतिकारी आंदोलन के रूप में सत्ता पर कब्जा करता है। रोम की तरफ मुसोलिनी की "कूच", वारसा की तरफ पिल्सुदस्की की कूच, जरमन में हिटलर की राष्ट्रीय समाजवादी "क्रांति", आदि स्मरणीय हैं। (पृष्ठ 18-21, वही)

फासीवाद के खिलाफ मजबूत संघर्ष फासीवाद के वर्ग चरित्र को उजागर किये बगैर नहीं खड़ा किया जा सकता। फासीवाद सभी वर्गों के लिए समान रूप से नुकसानदेह नहीं है। फासीवाद पूंजीपति वर्ग के किसी न किसी हिस्से के हितों को साध रहा होता है। पूंजीपति वर्ग का सबसे ज्यादा प्रतिक्रियावादी, सबसे ज्यादा अंधराष्ट्रवादी और सबसे ज्यादा साम्राज्यवादी हिस्सा ही फासीवाद का इस्तेमाल अपने हितों को आगे बढ़ाने के लिए करता है। जिस हद तक फासीवाद क्रांति के खतरे को कम या समाप्त करता है उस हद तक यह संपूर्ण पूंजीपति वर्ग के हित में होता है। लेकिन इसके बावजूद फासीवाद को लेकर पूंजीपति वर्ग के विभिन्न हिस्सों में अंतर्विरोध होता है। चूंकि फासीवाद का इस्तेमाल कर पूंजीपति वर्ग का एक हिस्सा पूंजीपति वर्ग के अन्य हिस्सों के पूंजीवादी जनवाद और संसदवाद का इस्तेमाल कर प्रतिद्वंद्विता करने की संभावना को समाप्त कर देता है या समाप्त करने की कोशिश करता है इसलिए फासीवादी पूंजीपति वर्ग और अन्य पूंजीपति वर्ग के बीच भीषण संघर्ष उठ खड़ा होता है। यह संघर्ष सशस्त्र संघर्ष की हद तक जा सकता है। इसलिए, पूंजीपति वर्ग के विभिन्न हिस्सों का प्रतिनिधित्व करने वाली पूंजीवादी पार्टियों के बीच के सत्ता के सामान्य अदला-बदली के रूप में फासीवाद की स्थापना या अंत नहीं होता है।

अलग-अलग देशों में फासीवाद का विकास एवं स्थापना अलग-अलग रूप धारण करती है। यह उस देश विशेष की ऐतिहासिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थिति तथा राष्ट्रीय विशेषताओं और अंतर्राष्ट्रीय संबंध द्वारा निर्धारित होता है। किसी देश विशेष में फासीवाद की स्थापना से पहले के दौर में होने वाले परिवर्तन फासीवाद की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। फासीवाद की स्थापना से पहले के दौर की सरकारों द्वारा उठाये गये कई कदम फासीवाद के आगमन को आसान बनाते हैं। ये कदम फासीवादी पार्टी की सरकारों द्वारा उठाए गए भी हो सकते हैं तो गैर फासीवादी पार्टी के द्वारा उठाए गये भी। इसलिए फासीवाद के विकास को अवरुद्ध करने के लिए जरूरी है कि इन सभी प्रतिक्रियावादी कदमों का विरोध किया जाए।

फासीवादी पार्टी जनता के एक बड़े हिस्से में अपना आधार कायम किये बगैर फासीवाद की स्थापना नहीं कर सकती। यह कहने की जरूरत नहीं कि पूंजीवाद के आम संकट का तीखा हो जाना फासीवाद की स्थापना के लिए जनाधार कायम करने वास्ते जरूरी है। लेकिन संकट के तीखा हो जाने मात्र से जनता फासीवाद को स्वीकारने को तैयार नहीं हो जाती। ऐसी स्थिति में फासीवादी पार्टी अपनी लफ्फाजियों के द्वारा जनता के असंतोष को भुनाती है। वह पुरानी पूंजीवादी पार्टियों, पूंजीपति वर्ग, पूंजीवादी व्यवस्था के प्रति जनता के जायज गुस्से को उभारती है और पूरे पाखंडपूर्ण तरीके से अपने आप को इन सबके विरोध में दिखाती है। वह जनता के बीच अपनी पैंठ बनाने के लिए देश के इतिहास और परंपराओं को अपनी जरूरत के हिसाब से प्रस्तुत करती है। अपने झूठ और अर्धसत्यों के दम पर जनता के अधिकाधिक पिछड़े हिस्सों को गोलबंद करती है। निम्न पूंजीपति वर्ग का व्यापक हिस्सा फासीवाद का वाहक बन जाता है, साथ ही मजदूर वर्ग भी फासीवाद के प्रभाव से अछूता नहीं रहता। ऐसी स्थिति कायम हो जाने पर फासीवादी पार्टी पूंजीवादी जनवाद और संसदवाद को समाप्त कर फासीवाद की खुली आतंकवादी तानाशाही कायम कर देती है।

फासीवाद की स्थापना वैसे तो पूंजीवादी व्यवस्था और पूंजीपति वर्ग की कमजोरी के द्योतक है। लेकिन फासीवाद की स्थापना के लिए सुधारवादी-संशोधनवादी राजनीति भी जिम्मेदार होती है। अपने वर्ग सहयोग की राजनीति की वजह से यह फासीवाद के पूंजीपति वर्ग के साथ संबंध को उजागर नहीं करती और जनता को पूंजीपति वर्ग खासकर वित्तीय पूंजीपति वर्ग के खिलाफ सचेत और संगठित नहीं करती। इस प्रकार फासीवाद की स्थापना में ये निष्क्रिय भागीदारी कर रही होती हैं।

इतिहास में मजदूर वर्ग ही वह ताकत है जो बढ़ते हुए फासीवाद पर लगाम लगा सकता है। मजदूर वर्ग अपनी क्रांतिकारी पार्टी के नेतृत्व में अपने आप को एक लड़ाकू सेना के रूप में एकजुट कर और निम्न पूंजीपतियों, नौजवानों और बुद्धिजीवियों पर फासीवाद के प्रभाव को विफल कर तथा इनके एक तबके को तटस्थ कर तथा दूसरे को अपने पक्ष में लाकर फासीवाद का रास्ता रोक सकता है। मजदूर वर्ग अपनी चौकसी के द्वारा और सही समय पर सही कार्यवाहियों के द्वारा फासीवाद को अपनी स्थिति सुदृढ़ करने से रोक सकता है।

अगर किन्हीं भी वजहों से मजदूर वर्ग फासीवाद को स्थापित होने से नहीं रोक पाता तो इसके परिणाम मजदूर मेहनतकश जनता के लिए काफी खौफनाक होते हैं। इसलिए मजदूर वर्ग का पहला प्रयास यही होगा कि वह फासीवाद को पनपने न दे और जैसे ही वह सिर उठाए उसका सिर कुचल दे। लेकिन फासीवाद स्थापित हो जाता है तो भी वह स्थिरता ग्रहण नहीं कर पाता। इसके अस्थिर होने के संबंध में दिमित्रोव कहते हैं :

> "फासिज्म तानाशाही की अस्थिरता के मुख्य कारण क्या हैं?
>
> फासिज्म पूंजीपति वर्ग के खेमे के भी मतभेदों और विरोधों को दूर करने की कोशिश करता है, मगर इन विरोधों को और भी उग्र बना देता है।
>
> फसिज्म अन्य राजनीतिक पार्टियों को जबर्दस्ती विनष्ट कर अपना राजनीतिक एकाधिकार कायम करने की कोशिश करता है। किन्तु पूंजीवादी व्यवस्था का अस्तित्व, विभिन्न वर्गों का अस्तित्व और वर्ग अंतर्विरोधों का तीव्र होना, फासिज्म के राजनीतिक एकाधिकार को खोखला करता है और उसका विस्फोट कर देता है, सोवियत देश में ऐसा नहीं होता, हालांकि वहां सर्वहारा का अधिनायकत्व एक पार्टी के राजनीतिक एकाधिकार के जरिये ही साकार होता है मगर वहां यह राजनीतिक एकाधिकार लाखों मेहनतकशों के हितों के अनुसार होता है तथा एक वर्गहीन समाज के निर्माण पर उत्तरोत्तर आधारित होता जाता है। एक फासिस्ट देश में, फासिस्टों की पार्टी वर्गों और वर्ग अंतर्विरोधों का उन्मूलन करने का लक्ष्य अपने सामने नहीं रख

सकती। वह पूंजीवादी पार्टियों के कानूनी अस्तित्व का खात्मा कर देती है। पर उनमें से अनेक अपना गैर कानूनी अस्तित्व बरकरार रखती हैं जबकि कम्युनिस्ट पार्टी अवैधता की परिस्थितियों में भी प्रगति जारी रखती है, पुख्ता और परिपक्व होती जाती है तथा फासिस्ट तानाशाही के खिलाफ सर्वहारा के संघर्ष का नेतृत्व करती है। इसलिए वर्ग अंतर्विरोधों के प्रहारों के अंतर्गत फासिज्म के राजनीतिक एकाधिकार का चकनाचूर होना अवश्यंभावी है।

फासिस्ट तानाशाही की अस्थिरता का एक और कारण यह है कि फासिज्म की पूंजीवाद विरोधी लफ्फाजी तथा सबसे ज्यादा दस्युतापूर्ण ढंग से इजारेदार पूंजीपति वर्ग को मालामाल करने की उसकी नीति के बीच की खाई के कारण फासिज्म के वर्ग स्वरूप को बेनकाब करना ज्यादा आसान हो जाता है तथा इससे उसका जनाधार डगमगाता और सिकुड़ता जाता है।

यही नहीं, फासिज्म की विजय आम जनता में गहरी घृणा और आक्रोश जगाती है, उनमें क्रांतिकारी चेतना जगाने में मदद करती है, तथा फासिज्म के खिलाफ सर्वहारा के संयुक्त मोर्चे को शक्तिशाली बढ़ावा देती है।

आर्थिक राष्ट्रवाद (आत्मनिर्भरता तंत्र) की नीति अपनाकर तथा युद्ध की तैयारी के उद्देश्य से राष्ट्रीय आय के अधिकांश भाग को बलपूर्वक छीन कर फासिज्म देश के पूरे आर्थिक जीवन को खोखला कर देता है और पूंजीवादी राज्यों के बीच आर्थिक युद्ध तेज कर देता है। पूंजीपति वर्ग के बीच जो टक्करें पैदा होती हैं, उनको यह जबर्दस्त और कभी-कभी खूनी भिड़ंतों का रूप दे देता है, जिससे जनता की नजरों में फासिस्ट राज्यसत्ता का स्थायित्व गिरता है। ... ...

मजदूर वर्ग को पूंजीवादी खेमे के विरोधों और टकरावों से फायदा जरूर उठाना चाहिए। लेकिन उसे यह खामखयाली नहीं पालनी चाहिए कि फासिज्म अपने आप नि:शेष हो जायेगा। फासिज्म अपने आप धराशायी नहीं होगा। फासिस्ट तानाशाही को खोखला करने और उसे उखाड़ फेंकने के लिए मजदूर वर्ग की क्रांतिकारी क्रियाशीलता ही पूंजीवादी खेमे के भीतर लाजिमी तौर पर पैदा होने वाले टकरावों से फायदा उठाने में सहायक हो सकती है।

पूंजीवादी जनतंत्र के अवशेषों को नष्ट कर, सरेआम हिंसात्मकता को शासन प्रणाली के पद पर आसीन कर फासिज्म जनवादी खामखयालियों को झकझोर देता है तथा मेहनतकश जनता की नजरों में कानून की सत्ता को गिराता है। ... ...

... ...

सारे पूंजीवादी देशों में संयुक्त मोर्चे के लिए जो प्रबल आकांक्षा पायी जाती है उससे सिद्ध होता है कि पराजय के सबक व्यर्थ नहीं गये हैं। मजदूर वर्ग **एक नए ढंग** से काम करना शुरू कर रहा है। संयुक्त मोर्चे के संगठन में कम्युनिस्ट पार्टियों ने जो पहलकदमी की है और फासिज्म के खिलाफ कम्युनिस्टों, क्रांतिकारी मजदूरों ने जो महानतम आत्मबलिदान किए हैं उनसे कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की प्रतिष्ठा में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। साथ ही द्वितीय इंटरनेशनल गहरे संकट से गुजर रहा है, ऐसे संकट से जो जरमन सामाजिक जनवाद के दिवालियेपन के बाद से खासतौर पर देखने में आया है और खास तौर पर तेज हुआ है। सामाजिक जनवादी कार्यकर्ताओं को यह बात उत्तरोत्तर ज्यादा आसानी से समझ में आती जा रही है कि अपनी समस्त विभीषिका और बर्बरताओं समेत फासिस्ट जर्मनी अंतिम विश्लेषण में **पूंजीपति वर्ग के साथ वर्गसहयोग की सामाजिक जनवादी नीति का परिणाम है**। इन जनसमुदायों को इस बात का उत्तरोत्तर अधिक स्पष्ट अहसास होता जा रहा है कि जरमन सामाजिक जनवादी नेता सर्वहारा को जिस रास्ते पर ले गए उस पर दुबारा कदम नहीं रखा जाना चाहिए। आज द्वितीय इंटरनेशनल के शिविर में जितना विचारधारात्मक मतभेद है उतना कभी नहीं रहा। सामाजिक जनवादी पार्टियों में विभेदीकरण की प्रक्रिया चल रही है। उनकी कतारों के भीतर दो **प्रधान शिविर** बनते जा रहे हैं: उन प्रतिक्रियावादी तत्वों के मौजूद शिविर के साथ ही साथ जो सामाजिक-जनवादियों और पूंजीपति वर्ग के गठबंधन को हर प्रकार से सुरक्षित रखने की कोशिश कर रहे हैं और जो कम्युनिस्टों के साथ संयुक्त मोर्चे को हठधर्मी के साथ ठुकराते हैं, **उन क्रांतिकारी तत्वों के शिविर का अभ्युदय आरंभ हो रहा है जिन्हें पूंजीपति वर्ग के साथ वर्ग सहयोग की नीति के सही होने के मामले में संदेह है, जो कम्युनिस्टों के साथ संयुक्त मोर्चा बनाने के पक्ष में हैं और जो उत्तरोत्तर क्रांतिकारी वर्ग संघर्ष की स्थिति अपनाते जा रहे हैं**।

इस प्रकार फासिज्म, जो कि पूंजीवादी व्यवस्था के ह्रास के फलस्वरूप आविर्भूत हुआ, कालांतर में **उसके और आगे विघटन** के हेतु के रूप में कार्य करता है। इस प्रकार वही फासिज्म, जिसने मार्क्सवाद को, मजदूर वर्ग के क्रांतिकारी आंदोलन को दफना देने का बीड़ा उठाया है, जीवन और वर्ग संघर्ष की द्वन्द्वात्मकता के फलस्वरूप स्वयं ही उन शक्तियों **के** और अधिक **विकास** में सहायक हो रहा है जिन्हें इसकी कब्र खोदने, पूंजीवाद की कब्र खोदने का काम करना है। (पृष्ठ 31-34, वही, जोर मूल में)

पूंजीवादी व्यवस्था के जिन अंतर्विरोधों की वजह से फासीवाद अपने आप को स्थापित करने में सफल होता है, वह उन अंतर्विरोधों को मिटाने के बजाए और ज्यादा तीखा कर देते हैं। फासीवादी पार्टी के राजनीतिक एकाधिकार कायम हो जाने के बाद अन्य पूंजीवादी पार्टियां गैर कानूनी तरीके से काम करने को बाध्य होती हैं। यह स्थिति उनके प्रभाव को कम कर देती है, लेकिन इनका अस्तित्व बरकरार रहता है। कम्युनिस्ट पार्टियां जो कि पहले से ऐसी स्थिति के लिए तैयार होती हैं, इन कठिनाइयों का सामना करते हुए और मजबूत होती हैं। कम्युनिस्ट पार्टी कार्यकर्ताओं की जुझारू क्षमता उन्हें फासीवाद विरोधी संघर्ष की सबसे अगली कतारों में ले आती है। फासीवादी शासन स्थापित होने के बाद धीरे-धीरे फासीवादी लफ्फाजियों की हकीकत जनता के पिछड़े हिस्सों के सामने भी उजागर होने लगती है। देश के भीतर पूंजीपति वर्ग के पक्ष में काम करने और दुनिया के स्तर पर युद्ध में उलझ कर देश की अर्थव्यवस्था को नुकसान पहुंचाने की सच्चाई ज्यादा समय तक जनता की आंखों से छिपी नहीं रहती। निम्न पूंजीपति वर्ग जनवाद के बारे में जितना कूपमंडूकतापूर्ण तर्क-वितर्क करता रहता है फासीवाद उन सबको एक झटके में तार-तार कर देता है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि फासीवादी शासन अपने अंतर्विरोधों के बोझ से अपने आप विघटित हो जाता है। फासीवादी शासन आतंकवादी और सैन्य तरीकों से

अंतिम दम तक अपने को टिकाने की कोशिश करता है। फासीवाद के खात्मे के लिए सर्वहारा वर्ग की क्रांतिकारी क्रियाशीलता अत्यंत आवश्यक है।

फासीवाद के द्वारा पूंजीवादी व्यवस्था के अंतर्विरोधों को अत्यंत तीखा बना देने का सर्वहारा वर्ग अपनी एकजुटता के दम पर लाभ उठाता है। फासीवाद के खिलाफ सर्वहारा द्वारा सही तरीके से संघर्ष चलाये जाने पर न केवल उसे पूंजीपति वर्ग के आपसी अंतर्विरोधों का लाभ मिलता है बल्कि सुधारवादी-संशोधनवादी पार्टियों में विघटन शुरू हो जाता है। इन पार्टियों का वर्ग सहयोगवादी हिस्सा जो कि कम्युनिस्टों के साथ संयुक्त मोर्चा बनाने का विरोध करता है अपना प्रभाव खो देता है। वहीं इन पार्टियों में एक दूसरा हिस्सा पैदा हो जाता है जो पूंजीपति वर्ग से सहयोग का विरोध करता है और कम्युनिस्ट पार्टी के साथ संयुक्त मोर्चा कायम करने का समर्थन करता है।

इस प्रकार फासीवाद मार्क्सवाद और कम्युनिस्ट पार्टी को दफन करने के अपने घोषित लक्ष्य के विपरीत उनको मजबूत कर देता है और पूंजीवाद के जिन अंतर्विरोधों की वजह से यह पैदा हुआ था उसको हल करने के स्थान पर उन्हें ऐसी स्थिति में पहुंचा देता है कि मजदूर वर्ग पूंजीवादी व्यवस्था को समाप्त कर वर्गविहीन समाज की स्थापना का रास्ता खोल सके।

फासीवाद को सत्ता हासिल करने से रोकने और फासीवाद द्वारा सत्ता हासिल कर लेने के बाद उसे उखाड़ फेंकने के लिए होने वाले संघर्ष की शुरुआत संयुक्त मोर्चा बनाने से होनी चाहिए। यह संयुक्त मोर्चा हर स्तर पर–कारखाना, जिला, इलाका देश और दुनिया के स्तर पर–कायम किया जाना चाहिए। कार्रवाई की एकता ही वह शक्तिशाली हथियार होता है जिसके दम पर मजदूर वर्ग न केवल सफल आत्मरक्षा करने में बल्कि सफल जवाबी हमला करने में भी सक्षम बनता है।

फासीवाद के विरोध के संबंध में बनने वाले संयुक्त मोर्चे का प्रस्थान बिन्दु और मुख्य अंतर्वस्तु मजदूर वर्ग के फौरी आर्थिक और राजनीतिक हितों की रक्षा करना और फासीवाद के खिलाफ मजदूर वर्ग की रक्षा करना होता है।

फासीवाद के खिलाफ संघर्ष में कार्रवाई की एकता अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। लेकिन फासीवाद कि खिलाफ विचारधारात्मक संघर्ष का भी कम महत्व नहीं होता। हम इस हिस्से का समापन फासीवाद के खिलाफ विचारधारात्मक संघर्ष के संबंध में दिमित्रोव द्वारा कही गयी बातों से कर रहे हैं:

> "हमारी पार्टियों के फासिस्ट-विरोधी संघर्ष का सबसे कमजोर पहलू यह है कि वे **फासिज्म की उत्तेजक लफ्फाजी के प्रति नाकाफी और बहुत ही मंद गति से प्रतिक्रिया व्यक्त करती हैं** और आज तक फासिस्ट विचारधारा के खिलाफ संघर्ष की समस्याओं को नजरअंदाज करती आ रही है। बहुत से साथी यह विश्वास नहीं करते थे कि पूंजीवादी विचारधारा का फासिज्म की विचारधारा जैसा प्रतिक्रियावादी नमूना जो अपनी बेहूदगी के मामले में अक्सर पागलपन की हद तक पहुंच जाता है, जनसाधारण पर कतई कोई प्रभाव डाल सकेगा। यह एक बहुत बड़ी गलती थी। पूंजीवाद की सड़ांध, उसकी विचारधारा और संस्कृति के अंतरतम तक पैठ जाती है तथा जनता के व्यापक समुदायों की अत्यंत बुरी स्थिति उनके कुछ हिस्सों को इस सड़ांध के विचारधारात्मक कचरे का शिकार बनने की हालत में ला पटकती है।
>
> फासिज्म के विचारधारात्मक रोगाणुओं की संक्रमण शक्ति को हमें किसी भी दशा में घटाकर नहीं आंकना चाहिए। उल्टे हमें स्वयं अपनी ओर से, स्पष्ट, लोकप्रिय तर्कों तथा जनसमुदाय के राष्ट्रीय मनोविज्ञान की विलक्षणताओं के प्रति सही, सुविचारित दृष्टिकोण के आधार पर विस्तृत विचारधारात्मक संघर्ष विकसित करना चाहिए।
>
> फासिस्ट हर राष्ट्र के सम्पूर्ण **इतिहास** को उलट-पलट रहे हैं ताकि उनके अतीत में जो कुछ महान और वीरतापूर्ण था, स्वयं को उसके उत्तराधिकारी और आगे ले चलने वाले के रूप में पेश कर सकें तथा जनता की राष्ट्रीय भावनाओं के प्रति जो कुछ अप्रतिष्ठाजनक या अप्रिय था उसका इस्तेमाल फासिज्म के दुश्मनों के खिलाफ हथियार के रूप में कर सकें।
>
> ... ...
>
> जो कम्युनिस्ट यह मान लेते हैं कि इस सबका मजदूर वर्ग के ध्येय से कोई संबंध नहीं, जो ऐतिहासिक दृष्टि से सही तरीके से, वस्तुतः मार्क्सवादी, मार्क्सवादी-लेनिनवादी भावना के साथ अपने जनगण के अतीत से जनसाधारण को अवगत कराने के लिए कुछ नहीं करते, जो **वर्तमान संघर्ष को जनगण की क्रांतिकारी परंपराओं और अतीत से जोड़ने के लिए** कुछ नहीं करते-वे स्वेच्छा से उस सब कुछ को झूठी बकवास करने वाले फासिस्टों के हवाले कर देते हैं जो राष्ट्र के ऐतिहासिक अतीत में मूल्यवान हैं, ताकि फासिस्ट लोग जनता को धोखा दे सकें।
>
> ... ...
>
> पूंजीवादी राष्ट्रवाद चाहे जिस रूप में हो, हम कम्युनिस्ट **सिद्धांततः इसके कट्टर दुश्मन हैं**, मगर **हम राष्ट्रीय निषेधवाद के समर्थक नहीं** हैं और न हमें कभी इस रूप में पेश आना चाहिए। मजदूरों और सभी मेहनतकशों को सर्वहारा अंतर्राष्ट्रवाद से दीक्षित करने का कार्य हर कम्युनिस्ट पार्टी के आधारभूत कर्तव्यों में से एक है। मगर जो कोई यह सोचता है कि इससे उसे व्यापक मेहनतकश जनसमुदाय की राष्ट्रीय भावनाओं का कत्तई तिरस्कार करने की इजाजत मिल जाती है या इसकी मजबूरी ही हो जाती है, वह सच्चा बोल्शेविक होने से बहुत दूर है तथा राष्ट्रीय सवाल पर लेनिन की शिक्षा को बिलकुल नहीं समझ सका हैं। (पृष्ठ-73-74, वही,जोर मूल में)

II

वर्तमान घोर दक्षिणपंथी एवं नवफासीवादी उभार का लेखा जोखा

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद से दुनिया में घोर दक्षिणपंथी पार्टियां लंबे समय तक हाशिये पर रहीं। अंतरविश्व युद्ध काल के नाजीवादी-फासीवाद के प्रति जनता की नफरत की वजह से कई देशों की सरकारों ने फासीवादी प्रवृत्तियों को अपराध के रूप में परिभाषित किया था और इसके लिए कानून में दंड का प्रावधान रखा था। लेकिन 1970 के दशक के तथाकथित लोक कल्याणकारी राज्य के ढांचे के संकटग्रस्त हो जाने के बाद से न केवल घोर दक्षिणपंथी पार्टियों को व्यवस्था में जगह मिलने लगी बल्कि पुरानी स्थापित पूंजीवादी दक्षिणपंथी पार्टियां भी क्रमशः और ज्यादा दक्षिण की ओर खिसकने लगीं। व्यवस्थापरस्त वामपंथी पार्टियां जो कि क्रांति का रास्ता काफी पहले ही छोड़ चुकी थीं, वे भी इन पार्टियों के पीछे घिसटते हुए प्रतिक्रियावादी मांगों और नारों के सामने आत्मसमर्पण करने लगीं। 2007-08 के विश्व आर्थिक संकट के बाद घोर दक्षिणपंथी पार्टियों को तेजी से पांव पसारने को मौका मिला। जमीनी स्तर पर हिंसात्मक कार्यवाहियों में तेजी आने के साथ-साथ चुनावी लड़ाई में भी इनका आधार तेजी से बढ़ता दिखाई दिया।

घोर दक्षिणपंथी हिंसा की एक बड़ी घटना जुलाई 2010 में नार्वे में हुई। घोर दक्षिणपंथी राजनीति से प्रभावित एंडर्स ब्रेविक नाम के एक व्यक्ति ने लेबर पार्टी यूथ समर कैंप पर अंधाधुंध गोलियां चलाई जिसमें 77 लोगों की जानें गयी। उसी साल नवम्बर में जर्मनी में एक नव नाजीवादी आतंकी सेल का खुलासा हुआ जिसने 1999 से 2007 के बीच 11 हत्याएं और 14 हथियारबंद डकैतियों को अंजाम दिया था। चिंताजनक बात सिर्फ यह नहीं थी कि 11 तुर्क लोगों की हत्याऐं हुई, बल्कि ज्यादा चिंताजनक बात यह थी कि सुरक्षा एजेंसियों ने मामले को दबा देने की पूरी कोशिश की। सितंबर, 2013 में ग्रीस में घोर दक्षिणपंथी पार्टी गोल्डन डाउन के नेतृत्व में तख्तापलट के एक प्रयास को कुचल दिया गया। इस षड्यंत्र में शामिल लोगों में चार सांसद और सेना, पुलिस तथा खुफिया एजेंसियों के बड़े-बड़े अधिकारी थे।

वर्ष 2017 घोर दक्षिणपंथी पार्टियों के चुनावों में बड़ी-बड़ी सफलता के नाम रहा। मार्च में हंगरी में हुए राष्ट्रपति चुनाव में जेम्स एडर विजयी हुए। ये सत्ताधारी रूढ़िवादी फिदेज पार्टी के सदस्य हैं जो कि धुर दक्षिणपंथ की तरफ खिसकी है। मई मं फ्रांस में हुए राष्ट्रपति चुनाव में मैरीन ली पेन दूसरे चरण में जाने में सफल रही। इन्हें अब तक के सबसे अधिक 1 करोड़ मत (34 %) मिले। सितंबर में जर्मनी में हुए चुनाव में ए एफ डी देश की तीसरी सबसे बड़ी ताकत बन कर उभरी। इसे 12.6 प्रतिशत मत प्राप्त हुए। इसने सभी मस्जिदों को बंद कराने और बुर्का पहनने को अपराध मानने का वादा किया था। दिसंबर में ऑस्ट्रिया में हुए चुनाव में फ्रीडम पार्टी (एफ पी ओ) 26 प्रतिशत मत के साथ तीसरी सबसे बड़ी पार्टी बनी। ऑस्ट्रियन पीपुल्स पार्टी के साथ यह गठबंधन सरकार में है। इन दोनों पार्टियों ने प्रवासी कानूनों को सख्त बनाने और शरण मांगने वालों को प्रत्यर्पित करने के लिए चुनाव अभियान चलाया था। यह सिलसिला 2018 में भी जारी है। मार्च, 2018 में इटली में हुए चुनाव में दक्षिणपंथी गठबंधन सबसे बड़ा गठबंधन बना।

अलग-अलग देशों की घोर दक्षिणपंथी पार्टियों में कुछ समानताओं के अलावा ढेर सारी भिन्नतायें हैं। इनके द्वारा उठाए जा रहे मुद्दों और अपनाए जा रहे तरीकों में भिन्नता है। अलग-अलग घोर दक्षिणपंथी पार्टी के अपने विकासक्रम में मुद्दों को तीखा करने या छोड़ देने का भी उदाहरण मिलता है। इस सभी को समझने के लिए हम कुछ देशों की घोर दक्षिणपंथी प्रवृत्तियों और पार्टियों का वर्णन कर रहे हैं:

ब्रिटेन

ब्रिटेन तथाकथित नवउदारवादी नीतियों को लागू करने वाले पहले देशों में रहा है। इन नीतियों के परिणाम ऊंची बेरोजगारी दर, आवास समस्या और ठहरी हुई सामाजिक गतिशीलता के रूप में जनता महसूस करती है। इन नीतियों को लेकर पूंजीपति वर्ग की तीनों स्थापित पार्टियों–कंजर्वेटिव पार्टी, लेबर पार्टी और लिबरल डेमोक्रेटिक पार्टी–में कोई फर्क नहीं है। ये सभी कटौती कार्यक्रमों को लेकर एक समान वचनबद्ध हैं। तीनों पार्टियों के बीच फर्क मिट जाने से प्रतिनिधिक जनतंत्र के लिए संकट पैदा हो रहा है। इस संकट का लाभ घोर दक्षिणपंथी पार्टी यूनाइटेड किंगडम इंडेपेंडेंस पार्टी (यू के आई पी) उठा रही है। यह पार्टी मुख्यधारा की पार्टी को अभिजातों की पार्टी के रूप में चित्रित करती है और अपने आप को व्यवस्था से बाहर की ताकत के रूप में दिखाने की कोशिश करती है।

यू के आई पी की स्थापना सितंबर 1993 में एक थैचर समर्थक इतिहासकार के द्वारा हुई। अपने शुरुआती वर्षों में यह पार्टी यूरोपीय यूनियन के विरोध का एकमात्र मुद्दा लेकर चली। लेकिन कंजर्वेटिव पार्टी, जो कि मुख्यधारा की दक्षिणपंथी पार्टी है, में फूट और गतिरोध पैदा हो जाने के अवसर का इस्तेमाल इसने अपने दायरे के विस्तार के रूप में किया। इसने अप्रवासन के सख्त नियंत्रण और राष्ट्रवादी शिक्षा नीति को अपने एजेंडे में शामिल किया। इससे दक्षिणी इंग्लैण्ड में इसकी सदस्यता और मत प्रतिशत दोनों बढ़े।

2004 तक यू के आई पी 20,000 की सदस्यता का दावा करने लगी। इस वर्ष हुए यूरोपीय संसद के चुनाव में यह 26 लाख वोट के साथ तीसरे स्थान पर रही। अब इस्लाम और प्रवासियों का विरोध इसके प्राथमिकता क्रम में ऊपर का स्थान लेने लगे और इसे नामी गिरामी हस्तियों का समर्थन मिलने लगा।

2006 में डेविड कैमरून ने कंजर्वेटिव पार्टी का नेतृत्व संभाला और ये अपनी पार्टी को केन्द्रवादी राजनीति की तरफ ले गए। यू के आई पी के नेता निकेल फैराज ने इसे अवसर माना और दक्षिण के पारंपरिक मुद्दे–जलवायु परिवर्तन से इंकार, करों में कटौती और व्याकरण स्कूलों का समर्थन–को अपना लिया और अपनी पार्टी को उदारवादी पार्टी की तरह प्रस्तुत किया। आतंक के खिलाफ युद्ध के

विश्वव्यापी माहौल में लेबर पार्टी में भी बदलाव हो रहा था और यह अधिनायकतावादी, इस्लाम से भय पैदा करने वाली और 'ब्रिटिशपन' की राजनीति करने लगी। पूरा माहौल दक्षिणपंथी उभार के अनुकूल था। 2010 के चुनाव में यू के आई पी ने मुसलमानों के खिलाफ जंग की घोषणा करते हुए बुर्के पर प्रतिबंध और श्वेतों के लिए "प्रतिबंधित" मुस्लिम बहुल इलाकों की जांच करने का वादा किया। लेकिन, कंजर्वेटिव पार्टी से अपनी निकटता दिखाना यू के आई पी के लिए भारी पड़ा, तब भी एक लाख वोट हासिल करने में यह सफल रही।

इसी दौरान एक अन्य घोर दक्षिणपंथी पार्टी ब्रिटिश नेशनलिस्ट पार्टी बिखर गयी जिसका लाभ यू के आई पी को आगे मिला।

2010 में छात्रों के बड़े आंदोलन और सार्वजनिक क्षेत्र की बड़ी हड़तालें हुईं, लेकिन क्रांतिकारी नेतृत्व के अभाव में यह दक्षिणपंथ की अग्रगति को नहीं थाम सके।

अगस्त 2011 में टोटेनहैम में पुलिस ने एक अश्वेत मार्क डुग्गन की गोली मार कर हत्या कर दी। इसके बाद इंग्लैण्ड के कई शहरों में भीषण दंगे फूट पड़े। दंगे अमीरों के प्रति गुस्से की अभिव्यक्ति थे और इसके निशाने पर बड़े चेनस्टोर थे। पुलिस ने दंगों का भीषण दमन करने के लिए अश्वेतों के खिलाफ नस्लभेदी माहौल को बढ़ावा दिया। घोर दक्षिणपंथी दस्तों ने कई स्थानों पर इस दौरान हिंसक कार्रवाइयों को अंजाम दिया। अश्वेतों और अप्रवासियों को सरकारी राहत के द्वारा बढ़ावा मिलने का प्रचार किया गया। इस सबके द्वारा इस्लाम, अप्रवासी और सरकारी राहत कि खिलाफ माहौल बनाया गया। 2012 में कुछ पाकिस्तानी मूल के लोगों द्वारा नाबालिग लड़कियों के कथित बलात्कार को भी मीडिया और दक्षिणपंथियों ने काफी उछाला। दक्षिणपंथियों के द्वारा यह प्रचार किया गया कि लेबर पार्टी ने श्वेत मजदूरों के हितों को तिलांजलि दे दी है क्योंकि इनकी ज्यादा चिंता राजनीतिक तौर पर सही होने और बहुसंस्कृतिवाद का समर्थक होने की है। 2015 तक यू के आई पी को लेबर पार्टी के लिए बड़ा खतरा माना जाने लगा।

मई 2015 के आम चुनाव में यू के आई पी को 40 लाख वोट मिले। यह 120 निर्वाचन क्षेत्रों में दूसरे नम्बर पर रही, यद्यपि इनका एकमात्र उम्मीदवाद डगलस कार्सवेल विजयी हो सका। अगर आनुपातिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली अपनाई गयी होती तो इन्हें 83 सीटें मिलती। इनका वोट 3.1 प्रतिशत से बढ़कर 12.6 प्रतिशत हो गया। 2016 में जनमत संग्रह में ब्रैक्जिट को सफलता दिलाने में शासक वर्ग के आपसी अंतर्विरोध और जनता के यूरोपीय यूनियन के प्रति गुस्से के साथ-साथ यू के आई पी की घोर दक्षिणपंथी राजनीति की भी भूमिका थी।

फ्रांस

फ्रांस की जनता आर्थिक सुधारों के खिलाफ पिछले कुछ सालों में लगातार सड़कों पर उतरती रही है। इसके बावजूद फ्रांस की सभी सरकारें कटौती कार्यक्रम जारी रखे हुए हैं। घोर दक्षिणपंथी पार्टियों द्वारा किया जाने वाला इस्लाम विरोधी प्रचार इस काम में उनकी मदद करता है। स्वयं फ्रांसीसी राष्ट्रपति इमैनुअल मैक्रों का कहना है कि इस्लामिक चरमपंथ फ्रांस की आंतरिक सुरक्षा के लिए सबसे बड़ा खतरा है। इस्लाम के प्रति भ्रम पैदा कर ओलां की सरकार ने नवंबर, 2015 में देश में आपात्काल लगा दिया जो कि 2 वर्ष तक कायम रहा। आपातकालीन अधिकार के तहत प्रदर्शनों पर रोक और तलाशी और गिरफ्तारी के असीमित अधिकार पुलिस के पास आ गये। नवंम्बर 2017 में आपातकाल तो समाप्त हो गया लेकिन आतंकवाद विरोधी कानून बनाकर सरकार ने इन्हीं आपातकालीन प्रावधानों को स्थायी बना दिया। घोर दक्षिणपंथी पार्टी फ्रंट नेशनल की नेता मैरीन ली पेन ने सरकार की खिल्ली उड़ाई कि इस्लामिक खतरे के बारे में उनकी पार्टी द्वारा बार-बार आगाह किये जाने के बावजूद सरकार कई जानें गवां देने के बाद जागी है और उनकी पार्टी द्वारा सुझाए गये कदमों को उठा रही है। जनता के भीतर इस्लाम तथा अप्रवासियों के प्रति इतना भय भर दिया गया है कि अपने नागरिक अधिकारों में कटौती वाले प्रावधानों का जनता का एक हिस्सा स्वयं समर्थन कर रहा है।

फ्रांस की राजनीति में पूंजीपति वर्ग की दो पार्टियों का वर्चस्व है। ये हैं यूनियन फॉर पापुलर मूवमैन्ट (यू एम पी) और सोशलिस्ट पार्टी। घोर दक्षिणपंथी पार्टी फ्रंट नेशनल 2017 के राष्ट्रपति चुनाव में इस द्वि पार्टी व्यवस्था को तोड़ती दिखाई दी जब वह चुनाव के दूसरे दौर में पहुंच गई और भारी मत भी प्राप्त कर लिए। इस पार्टी को मिलने वाला समर्थन वैश्वीकरण की नीतियों के प्रति जनता के गुस्से की अभिव्यक्ति है।

फ्रंट नेशनल की स्थापना इसकी वर्तमान नेता मैरीन ली पेन के पिता जीन-मैरी ली पेन ने 1972 में की थी। फ्रंट नेशनल की स्थापना उन राष्ट्रवादी समूहों को मिलाकर की गयी थी जो अल्जीरिया की फ्रांस की गुलामी से मुक्ति से खिन्न थे। 1984 से पहले यह पार्टी हाशिये पर रही, लेकिन इसके बाद इसने बढ़त बनानी शुरू की। 2002 के राष्ट्रपति चुनाव में जीन-मैरी ली पेन दूसरे दौर में पहुंच गए, लेकिन इसका पूरे फ्रांस में इतना विरोध होना शुरू हुआ कि दूसरे प्रत्याक्षी जैक शिराक को कोई चुनाव अभियान चलाने की जरूरत ही नहीं पड़ी। शिराक ने प्रत्याशियों के बीच होने वाली पारंम्परिक बहस में भी भाग लेने से इंकार कर दिया। दूसरे दौर के चुनाव में ली पेन शिराक से बुरी तरह हारे। ली पेन को डेविल ऑफ रिपब्लिक (गणतंत्र का दैत्य) के नाम से नवाजा गया।

2002 के बाद से क्षेत्रीय चुनावों में दो चरणों की मतदान की व्यवस्था लागू होने के बाद फ्रंट नेशनल को मिलने वाली चुनावी सफलता में कमी आई। यह व्यवस्था फ्रंट नेशनल को अलगाव में डालने के घोषित ध्येय से की गयी थी। 2011 में पार्टी के नेतृत्व की जिम्मेदारी पुत्री मैरीन ली पेन ने संभाली। इन्होंने पार्टी के 'विदानवीकरण' करने के लिए कदम उठाये। इन्होंने घोर दक्षिणपंथी के लेबल को ठुकराया और ऐसा नाम दिये जाने वाले पर कानूनी कार्रवाई की धमकी दी। इन्होंने पार्टी को वैश्वीकरण, नवउदारवाद और यूरापीय

एकीकरण के विरोधी के रूप में प्रस्तुत किया। पार्टी का नेतृत्व अब लगातार यह संदेश देने की कोशिश करने लगा कि अतीत के अतिरेकों से पार्टी ने दूरी बना ली है और यह अब सम्माननीय है और जनतांत्रिक और सभ्य राजनीतिक जीवन की जरूरतों का पालन करती है। 2015 में पार्टी के कई विवादित सदस्यों को पार्टी से निलंबित कर दिया गया। पिता ली पेन को भी नाजी चैंबरों का हवाला देने के लिए पार्टी से निलंबित किया गया।

इस दौरान स्वयं मुख्यधारा की पार्टी की करतूतें फ्रंट नेशनल के लिए जमीन तैयार कर रही थीं। सरकोजी ने फ्रांसीसी पहचान को मुद्दा बनाया जिसके बारे में कहा गया कि यह खतरे में है। लेकिन फ्रांसीसी पहचान क्या है इसको धुंधला छोड़ दिया गया। 2012 में ओलां राष्ट्रपति बने, लेकिन उन्होंने सरकोजी की नीतियों को जारी रखा। फ्रंट नेशनल ने 'व्यवस्था' की पार्टियों के बरक्स अपने तृणमूल होने का दावा किया और जनता की परिभाषा में से "गैर राष्ट्रीय" को अलग रखने की बात की। मुसलमानों के बारे में संदेह जताया कि ये फ्रांस का इस्लामीकरण करना चाहते हैं। पार्टी ने रोमा आबादी को भी निशाना बनाया। अप्रवासियों पर आरोप लगाया कि वे सरकारी राहत के लालच में आते हैं और इस तरह सरकारी राहत पर भार पड़ता है और राष्ट्रीय पहचान भी धूमिल होती है। वैसे पार्टी ने अपने को फासीवादी, पहचानवादी, यहूदी विरोधी, महिला विरोधी, समलैंगिक विरोधी राजनीति से मुक्त बताया लेकिन ऐसी मान्यता वाले लोग पार्टी में धड़ल्ले से भर्ती हुए। इन सब वजहों से पार्टी का चुनावी प्रदर्शन सुधरने लगा और 2017 के राष्ट्रपति चुनाव में फ्रांस में अमेरिका के राष्ट्रपति चुनाव की पुनरावृत्ति का खतरा जताया जाने लगा।

वैसे, अभी फ्रांसीसी संसद में चुनाव के विशेष नियमों की वजह से फ्रंट नेशनल (इस वर्ष इसका नाम बदलकर नेशनल रैली कर दिया गया है) की उपस्थिति काफी कम है, लेकिन मैक्रों की नीतियां इसके लिए जमीन तैयार करने का काम कर रही हैं।

2017 के राष्ट्रपति चुनाव में मैक्रों की जीत और 2017 के संसदीय चुनाव में मैक्रों की पार्टी को मिला बहुमत आज के फ्रांस की राजनीति की एक अन्य विशेषता को प्रदर्शित करता है। मैक्रों फ्रांसुआ ओला सरकार में मंत्री थे। उन्होंने वाम और दक्षिण के भेद को नकारने की बात की और अपनी पार्टी के दरवाजे सोशलिस्ट पार्टी और रिपब्लिकन (यूनियन फॉर पापुलर मूवमेंट का नया नाम) दोनों के सदस्यों के लिए खुला रखने की बात की। इन्हीं पार्टियों से आए नेता-कार्यकर्ताओं की बड़ी संख्या के दम पर उन्होंने राष्ट्रपति चुनाव और संसदीय चुनाव दोनों का सामना किया। इन दोनों पुरानी पार्टियों को मिलने वाले वोट और सीटें काफी गिर गयीं और एक बिलकुल नयी पार्टी ने अपनी स्थापना के दो सालों में भारी सफलता हासिल की। मैक्रों की नयी पार्टी की सफलता पुरानी स्थापित पार्टियों के खिलाफ आक्रोश की एक अन्य तरीके से अभिव्यक्ति है।

जर्मनी

कुछ साल पहले तक जर्मनी में नफरत की राजनीति करने वालों को कानूनी प्रतिबंधों का सामना करना पड़ता था। लेकिन पिछले कुछ सालों में घोर दक्षिणपंथी पार्टी अल्टरनेटिव फॉर जर्मनी (ए एफ डी) जर्मनी की तीसरी सबसे बड़ी पार्टी बन गयी है। ऐसी ही दूसरी पार्टी पेगिडा ने कुछ ही समय में अपने समर्थकों और विरोधियों दोनों के बीच काफी ख्याति (कुख्याति) प्राप्त कर ली है।

ए एफ डी की स्थापना अप्रैल, 2013 में हुई। इसी वर्ष हुए केन्द्रीय चुनाव में इसने 4.7 प्रतिशत मत प्राप्त किए और मामूली अंतर से संसद में पहुंचने के लिए न्यूनतम (5 प्रतिशत) मत प्राप्त करने से रह गयी। 2014 के यूरोपीय संसद के चुनाव में इसे 7 सीटें मिलीं। 2017 के संसदीय चुनाव में 12.6 प्रतिशत मत के साथ यह तीसरी सबसे बड़ी पार्टी बन गयी। इस चुनाव के बाद दो सबसे बड़ी पार्टीयों क्रिश्चियन डेमोक्रेटिक यूनियन और सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी ने महागठबंधन कर सरकार बनायी। इस तरह ए एफ डी जर्मनी की संसद में विपक्ष की सबसे बड़ी पार्टी है।

पार्टी की स्थापना के वक्त इसकी राजनीति यूरोजोन के अन्य देशों को जर्मनी से मिलने वाली मदद का विरोध करना थी। लेकिन समय के साथ यह जर्मनी की संप्रभुता और राष्ट्रीय गौरव हासिल करने की बात करने लगी। खास तौर पर जर्मनी के नाजी अतीत को लेकर शर्म की संस्कृति को खारिज करना इसका केन्द्रीय मुद्दा बन गया। पार्टी कहती है कि जर्मनी की राष्ट्रीय पहचान को यूरोपीय एकीकरण और अप्रवासियों दोनों से खतरा है। 2015 के बाद से पेगिडा के साथ मिलकर काम करने के लिए यह ज्यादा से ज्यादा प्रस्तुत है।

पेगिडा जर्मनी के नाम पैट्रियोटिक यूरोपियन अगेन्स्ट द इस्लामाइजेशन ऑफ वेस्ट का संक्षिप्तिकरण है। इसकी स्थापना 2014 में हुई। यह आप्रवासन पर रोक लगाने की बात करती है और अधिकारियों पर आरोप लगाती है कि वे मौजूदा आप्रवासन कानून को लागू नहीं कर रहे हैं। इसकी कार्यवाही सोमवार को होने वाले साप्ताहिक प्रदर्शन के रूप में है। 20 अक्टूबर 2014 को हुए इसके पहले प्रदर्शन में मुट्ठीभर लोग आए। धीरे-धीरे इसने ज्यादा ध्यान आकर्षित करना शुरू किया और 8 दिसम्बर 2014 को हुए प्रदर्शन में 10,000 लोगों ने भागीदारी की। भागीदारों के हाथों में तख्तियां होती हैं जिसमें मुस्लिम विरोधी नारे लिखे होते हैं। 7 जनवरी 2015 को हुए फ्रांस की पत्रिका शार्ली एब्दो पर हमले के बाद ढेर सारे लोगों ने मांग की कि पेगिडा इस मामले को अपनी राजनीति के लिए इस्तेमाल न करे। पेगिडा द्वारा संभावित इस्तेमाल को रोकने के लिए 10 जनवरी को प्रदर्शन हुआ जिसमें 35000 लोगों ने भागीदारी की। लेकिन पेगिडा अपने प्रदर्शन पर अड़ा रहा और 12 जनवरी को 25000 भागीदारों के साथ इसने प्रदर्शन किया। इसके बाद हुए पेगिडा के प्रदर्शन भागीदारों की संख्या के लिहाज से महत्वपूर्ण नहीं रहे हैं, खासतौर पर तब जबकि इसके विरोध में हुए प्रदर्शनों में लाख तक की

भागीदारी रही है। लेकिन पेगिडा के प्रदर्शनों के साथ लंपटों की हिंसक कार्यवाही शुरू हो गयी। इसके निशाने पर विदेशी दुकानें होती हैं। यूरोपीय आप्रवासी संकट ने भी पेगिडा को ख्याति दिलाने में मदद पहुंचाई।

एंजेला मर्केल यद्यपि अप्रवासी विरोधी राजनीति को खारिज करती हैं लेकिन उनकी नयी सरकार में गृहमंत्री ने एक अखबार को दिए साक्षात्कार में कहा कि इस्लाम जर्मनी का हिस्सा नहीं है और जर्मनी इसाईयत के लिए है।

इटली

इटली यूरोजोन का तीसरा सबसे बड़ा देश है। 2007-08 के संकट से सबसे ज्यादा नुकसान उठाने वाले देशों में इटली भी है। इस दौरान इसकी अर्थव्यवस्था 6.76 प्रतिशत सिकुड़ गयी। संकट से उबरने के लिए बेलआउट पैकेज की वजह से सरकार पर कर्ज बढ़ गया। मारियो मोंटी की टेक्नोक्रेट सरकार द्वारा उठाए गए कटौती कदमों से सरकार का कर्ज कम हुआ लेकिन इन्हीं वजहों से अर्थव्यवस्था 2012-13 में पुनः मंदी का शिकार हो गयी। 2014 से निर्यात में वृद्धि और बैंकों में सुधार की वजह से स्थिति कुछ संभली है, लेकिन अर्थव्यवस्था की नकारात्मक रेटिंग अभी भी बनी हुई है। सरकार बेरोजगारी दर को काफी कम दिखाती है, लेकिन विशेषज्ञों के अनुसार बेरोजगारी दर खास तौर पर नौजवानों में अभी भी काफी ऊंची है।

इटली फासीवाद का प्रस्तोता देश है। द्वितीय विश्व युद्ध में फासीवाद की पराजय के बाद मुसोलिनी की पार्टी के लोगों ने मिलकर इटालियन सोशल मूवमेंट नाम से पार्टी गठित की। यह पार्टी लंबे समय तक बनी रही और फासीवाद से अपने रिश्तों को लेकर लगातार उलझी रही। इटली में हमेशा ही इसका प्रभाव नाम मात्र का रहा। इटली में 1945 से लेकर 1994 तक कुछ वर्षों को छोड़कर क्रिश्चियन डेमोक्रेसी पार्टी लगातार सत्ता में रही। इन वर्षों में दूसरी सबसे बड़ी पार्टी इटालियन कम्युनिस्ट पार्टी थी। 1992-94 के बीच इटली में भ्रष्टाचारों की श्रृंखला उजागर हुई जिसमें क्रिश्चियन डेमोक्रेसी पार्टी और इसकी चार सहयोगी अन्य पार्टियों के सभी बड़े नेता गिरफ्तार हुए। इस घटना के बाद ये पांचों पार्टियां समाप्त हो गयीं। इसी दौरान अन्य पुरानी पार्टियों में भी बदलाव हुआ। इटालियन कम्युनिस्ट पार्टी बदलकर डेमोक्रेटिक पार्टी ऑफ लेफ्ट बन गयी। 2018 से पहले की सत्ताधारी डेमोक्रेटिक पार्टी इसी की वंशज पार्टी है। इटालियन सोशल मूवमेंट ने फासीवाद से अपना नाता पूरी तरह तोड़ लिया और अपना नाम नेशनल एलायंस रख लिया। आज यह पार्टी अन्य पार्टियों में विलीन हो चुकी है। इस दौरान दो नई पार्टियों ने जन्म लिया। क्रिश्चियन डेमोक्रेसी का स्थान लेने के लिए फोर्जा इटालिया पैदा हुई, जिसके नेता सिल्वियो बर्लुस्कोनी कई वर्ष इटली के प्रधानमंत्री रह चुके हैं। दूसरी पार्टी उत्तर की क्षेत्रीय पार्टियों का एक संघ उत्तरी लीग बनी। 2013 से पहले तक यह उत्तरी प्रदेशों की अधिक स्वायत्तता की राजनीति करती थी। 2013 के बाद मैटियो सैल्विनी के नेतृत्व में इसका रूपान्तरण एक घोर दक्षिणपंथी पार्टी के रूप में हुआ। अब इसके मुद्दों में इटली का राष्ट्रवाद, यूरोप के प्रति संदेह शामिल हो गया। इटली में एक और घोर दक्षिणपंथी पार्टी फाइव स्टार मूवमेंट का जन्म 2009 में एक कामेडियन ग्रिलो के द्वारा हुआ। यह पार्टी अपने को व्यवस्था विरोधी, यूरोप के प्रति शंकालु और अप्रवासी विरोधी बताती है।

मार्च 2018 के चुनाव के नतीजों में किसी पार्टी या गठबंधन को बहुमत नहीं मिला। काफी हफ्तों की रस्साकस्सी के बाद दो घोर दक्षिणपंथी पार्टी फाइव स्टार मूवमेंट और लीग (पुराना नाम उत्तरी लीग) ने मिलकर गठबंधन सरकार बनाने का फैसला किया। गठबंधन के प्रधानमंत्री गिसेपी कोंते ने जब अपने मंत्रियों की सूची राष्ट्रपति को सौंपी तो राष्ट्रपति ने वित्तमंत्री के नाम पर आपत्ति जता दी। राष्ट्रपति को एतराज था कि यूरोपीय यूनियन का विरोधी वित्तमंत्री नहीं बन सकता है। गठबंधन को झुकना पड़ा और वित्त मंत्री बदलना पड़ा। नयी सरकार ने पदभार संभालते ही गृहमंत्री मैटियो सैल्विनी ने अप्रवासियों को धमकाया कि वे अपने बस्ते बांधने के लिए तैयार हो जाएं। वित्तमंत्री के नाम पर एतराज जताने वाले राष्ट्रपति को ऐसे गृहमंत्री पर कोई एतराज नहीं है। स्पष्ट है कि वित्त पूंजी घोर दक्षिणपंथी पार्टियों के वैश्वीकरण विरोधी कदमों को ही रोकेगी, उनके नफरत फैलाने वाले कदमों को नहीं।

ऑस्ट्रिया

ऑस्ट्रिया दुनिया के विकसित देशों में शामिल है। 1990 से पहले इसकी अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीयकृत उद्योगों की मुख्य भागीदारी थी। इसके बाद से इन उद्योगों का निजीकरण शुरू हुआ। यही वह समय भी था जब घोर दक्षिणपंथी पार्टी फ्रीडम पार्टी ऑफ आस्ट्रिया (एफ पी ओ) ने अपना आधार बढ़ाना शुरू किया।

फ्रीडम पार्टी ऑफ ऑस्ट्रिया की स्थापना 1956 में हुई। इसके सबसे पहले नेता एंटोन रीनथालर पूर्व नाजी अधिकारी थे। 1990 से पहले तक चुनावों में इसका मत प्रतिशत 10 से कम रहा। इस समय इसकी राजनीति सर्वजर्मनवाद की और समाजवाद और कैथोलिक पादरीवाद दोनों के विरोध की थी। 1980 और 1990 के दशक में इसने अपनी राजनीति बदलनी शुरू की और अपने आप को व्यवस्था विरोधी घोषित कर मुख्यधारा की दो पार्टियों के एकाधिकार को चुनौती देनी शुरू की। धीरे-धीरे अप्रवासन विरोध और इस्लाम विरोध भी इसकी राजनीति में शामिल हो गया। सर्वजर्मनवाद को छोड़कर यह ऑस्ट्रियाई राष्ट्रीयता की वकालत करने लगी और इसके द्वारा

यूरोपीय यूनियन का विरोध मजबूत होता गया। 1990 से इसका मत प्रतिशत बढ़ कर 1999 में अधिकतम 26.9 प्रतिशत तक पहुंच गया। इस समय सरकार में शामिल होने के बाद पुनः इसका मत प्रतिशत गिर गया तब भी 10 प्रतिशत से ज्यादा मत इसे मिलते रहे जो कि समय के साथ और बढ़ते गये। 2017 के चुनाव में पुनः 26 प्रतिशत मत पाकर यह तीसरी सबसे बड़ी पार्टी बनी और आस्ट्रियन पीपुल्स पार्टी के साथ गठबंधन सरकार में शामिल है। इस समय तक स्वयं आस्ट्रियन पीपुल्स पार्टी काफी दक्षिण की तरफ खिसक चुकी है।

सरकार गठित होने के बाद नए चांसलर सेबास्टिचन कुर्ज ने कहा कि आप्रवासन विरोध के अपने एजेंडे से वे पीछे नहीं हटने वाले। कुर्ज ने यह भी मांग की है कि अप्रवासियों को उनके मूल देश में ही 'सुरक्षित क्षेत्र' बनाकर रोका जाय और यूरोपीय यूनियन न सिर्फ इसको अंजाम दे बल्कि सैन्य तरीकों से इसे मदद भी पहुंचाए।

संयुक्त राज्य अमेरिका

अमेरिका में रीगन द्वारा 80 के दशक में आर्थिक सुधारों की शुरुआत से पहले ही 1970 के दशक में नागरिक आजादी जैसे जनवादी अधिकारों में कटौती होनी शुरू हो गयी थी। पिछले 30-40 सालों में अमेरिका में नागरिक स्वतंत्रता की स्थिति कितनी बुरी हो रही है, इसकी एक झलक एडवर्ड स्नोडेन द्वारा किये गये खुलासे में हुई। नागरिकों की हो रही जासूसी को अमेरिकी संसद तक से छिपाया गया और खुफिया अधिकारियों ने संसद में दिए गऐ बयानों में ऐसी गतिविधियों से इंकार किया था। स्नोडेन के खुलासे के बाद ही पता चला कि अमेरिकी खुफिया अधिकारी संसद के समक्ष भी झूठ बोलते रहे हैं। यद्यपि एडवर्ड स्नोडेन के खुलासे के बाद संसद ने नागरिकों की जासूसी पर रोक लगा दी है, लेकिन अभी भी कोई भरोसा नहीं कर सकता कि संसद और आम जनता की जानकारी के बाहर सरकार नागरिकों के खिलाफ क्या षड्यंत्र कर रही है।

अमेरिका के श्वेत-अश्वेत सभी हिस्सों के लिए आर्थिक सुधारों के दुष्परिणामों और राज्य के अधिनायकवादी होते जाने के समानांतर अमेरिका में घोर दक्षिणपंथी समूहों की संख्या और कार्यवाहियां बढ़ती गयी हैं। खास तौर पर 2000 के बाद ये तेजी से बढ़े हैं। सदर्न पोवार्टी लॉ सेंटर के अनुसार 2015 में अमेरिका में 939 नफरत फैलाने वाले समूह काम कर रहे थे जो कि 2000 से 56 प्रतिशत ज्यादा हैं। ओबामा के शासन काल में पैदा होने वाला टी पार्टी आंदोलन भी एक घोर दक्षिणपंथी आंदोलन था। यह रिपब्लिकन पार्टी के लोगों द्वारा खड़ा किया गया आंदोलन था जो सरकार द्वारा चलाये जाने वाले राहत कार्यक्रम का विरोध करता था। अमेरिका में नफरत फैलाने वाले ढेर सारे छोटे-छोटे समूह देश स्तर पर तीन तरह के ढीले-ढाले गठबंधन का हिस्सा हैं। ये गठबंधन हैं : अल्ट राइट, अल्ट लाईट और सशस्त्र मिलीशिया।

अल्ट लाईट गठबंधन में तथाकथित लोकरंजताकवादी, श्वेत श्रेष्ठतावादी, श्वेत राष्ट्रवादी, नव परिसंघवादी और नव नाजी समूह शामिल हैं। इस गठबंधन के सभी समूह प्रायः श्वेत श्रेष्ठतावाद, श्वेत राष्ट्रवाद को स्वीकारते हैं और महाविध्वंस (Holocaust) से इंकार करते हैं। इनके कार्यकर्ताओं में महिलाओं की संख्या न के बराबर है। यह गठबंधन इंटननेट के माध्यम से चलता है। अल्ट लाईट समूह अपेक्षाकृत नरमपंथी है। यह ट्रंप का समर्थक है और अमेरिकी राष्ट्रवाद के कट्टर संस्करण को मानता है। मिलीशिया समूह अपने को "देशभक्त समूह" बताता है। इसके सदस्य रैलियों में राइफलों और बुलेट प्रूफ जैकेट के साथ भागीदारी करते हैं। वे दक्षिणपंथी विरोधी रैलियों में भी सुरक्षा प्रदान करने के नाम पर शामिल होते हैं। ये अपने ऊपर नस्लवाद और श्वेत श्रेष्ठतावाद के आरोप को झुठलाते हैं।

घोर दक्षिणपंथी समूह कई पीढ़ियों से अमेरिका में रह रहे अफ्रीकी-अमेरिकियों और लातिनी लोगों को भी बुरा बताते हैं और कहते हैं कि इनकी वजह ये पूरे समाज का स्तर नीचे गिर रहा है। इनके बीच पाये जाने वाली भारी पैमाने की बेरोजगारी का दोष इन्हीं पर मढ़ा जाता है, न कि कटौती कार्यक्रम और नस्लीय उत्पीड़न पर। इनके संबंध में चर्चा होने पर अपराध और असामाजिक व्यवहार चर्चा का केन्द्र बिंदु बन जाता है और कहा जाता है कि इन्हें या तो चारदीवारी से घेरा जाना चाहिए या स्थापित समाज से बहिष्कृत रखना चाहिए। ये कहते हैं कि जनता अगर बाहरी और अपने से भिन्न लोगों के बारे में सोचती है कि वे उनकी संस्कृति का तनुकरण कर रहे हैं तो गलत नहीं है। अश्वेतों और बाहरी लोगों के बारे में कहा जाता है कि अगर ये अस्तित्व के लिए खतरा नहीं हैं तब भी सुरक्षा के लिए तो खतरा हैं ही।

यह नया नस्लवाद एक ऐसी परिस्थिति में पैदा हो रहा है जबकि श्वेत मजदूरों के भी जीवन स्तर में गिरावट आई है और कइयों को लगता है कि नस्लीय पदानुक्रम पूंजीवाद की विभीषिकाओं से उन्हें बचाएगा। अमेरिकी मीडिया भी इस्लामिक आतंकवाद पर काफी शोरगुल करता है जबकि घरेलू श्वेत आतंकवाद पर शांत रहता है।

अन्य देशों के उलट अमेरिकी घोर दक्षिणपंथी संगठन केन्द्र सरकार के बरक्स प्रादेशिक सरकारों को मजबूत करने की बात करते हैं। नव परिसंघवादी राजनीति के तहत ये कहते हैं कि अमेरिकी सरकार संविधान निर्माताओं के लक्ष्यों से दूर चली गई है। ये कहते हैं कि संविधान निर्माताओं ने प्रादेशिक सरकारों को जो स्वायत्तता दी थी, उसे संविधान संशोधनों द्वारा समाप्त कर दिया गया। वैश्वीकरण का विरोध ये राष्ट्रीय शुद्धता की अपनी धारणा के आधार पर करते हैं, न कि इसके आर्थिक पहलुओं के आधार पर। ये महिलाओं की परंपरागत भूमिका को बनाए रखने की वकालत करते हैं।

ट्रंप की जीत में इन घोर दक्षिणपंथी समूहों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। अपने राष्ट्रपति चुनाव अभियान के दौरान और पदभार ग्रहण करने के बाद भी ट्रंप ने घोर दक्षिणपंथियों के मुद्दों को लपक लिया था।

जापान

जापान द्वितीय विश्व युद्ध के विनाश का एक बड़ा भुक्तभोगी देश है। हिरोशिमा और नागासाकी पर बरपाया गया कहर न केवल जापान बल्कि पूरी दुनिया की जनता में पूंजीवादी युद्ध के प्रति नफरत पैदा करने के लिए पर्याप्त है। इस युद्ध में जापान की हार के बाद विजित साम्राज्यवादी देशों की शर्तों और जनता की युद्ध के प्रति नफरत की वजह से 1945 के बाद का जापान शांतिवादी आवरण ओढ़ने को बाध्य हुआ। लेकिन बाद में रूस और चीन के समाजवाद को टक्कर देने और शीत युद्ध में अपने खेमे को मजबूत करने के लिए अमेरिका ने न केवल जापान के पुनर्निर्माण में मदद की,बल्कि जापान के छिपे सैन्यीकरण को भी प्रश्रय दिया। अब शीत युद्ध की समाप्ति के बाद और जापान की अमेरिका के साए से निकलने की कोशिश के बावजूद रूस और चीन को घेरने में अमेरिका और जापान के कुछ साझे हित बन जाते हैं जो कि जापान के वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य पर असर डालते हैं।

वर्तमान में जापान में शिंजो अबे का शासन है। इनकी पार्टी लिबरल डेमोक्रेटिक पार्टी 1955 में अपनी स्थापना के साथ से ही जापान के शांतिवादी संविधान को बदलने का लक्ष्य रखे हुए है। शिंजो अबे ने एक तरफ अपनी अबेनोमिक्स के द्वारा जनता का जीवन दूभर किया वहीं वे जापान की राजनीति को और ज्यादा दक्षिणपंथ की तरफ ले गए हैं। अबेनोमिक्स के नतीजे के बतौर जनता की खर्च करने संबंधी आमदनी कम हुई है, अप्रत्यक्ष कर बढ़े हैं, नियमित काम का स्थान अंशकालिक, अस्थाई या अनियमित काम ने ले लिया है। एक समय की मॉडल स्वास्थ्य सेवा बुरी हालत में है। 16 लाख लोग पूरी तरह सरकारी राहत पर निर्भर हैं। अबे ने वादा किया है कि वह जापान को कारोबार के लिए दुनिया का सबसे आसान स्थान बना देंगे। इसका आशय मजदूर वर्ग के लिये यही निकलता है कि उनकी जीवन एवं कार्य परिस्थितियां कठिन हो जायेंगी और उनकी सामूहिक सौदेबाजी की क्षमता खराब हो जायेगी।

अबे जापान के सामंती और फासीवादी अतीत को गौरव के साथ देखते हैं। वे 1951 में हुए अमेरिका के साथ समझौते, 1946 के संविधान और 1947 के शिक्षा के बुनियादी कानून तीनों को बदलने की बात करते हैं। अबे के मंत्रीमंडल के प्रायः सभी सदस्य देश के ऐसे संगठनों के सदस्य हैं जो टोक्यो ट्रिब्यूनल (युद्ध अपराध पर मुकदमे के लिए गठित) के फैसलों को खारिज करते हैं, नानजिंग नरसंहार से इंकार करते हैं और युद्धकाल के 'सेक्स स्लेव' की व्यवस्था से इंकार करते हैं। ये नैतिक और सही शिक्षा की वकालत करते हैं और जापान की खूबसूरती पर जोर देते हैं। ये मानते हैं कि जापान और इसके निवासी अलौकिक, श्रेष्ठ और सम्राट केन्द्रित हैं।

अबे और इनके सहयोगियों द्वारा लायी गयी इतिहास की नयी पाठ्यपुस्तकों को इस तरह डिजाइन किया गया है ताकि 'देश के प्रति प्यार पैदा हो' और उस इतिहास को दफन किया जाए जो युद्ध और इसकी बर्बरता के लिए जापान को दोषी ठहराता है।

2013 के अंत में अबे ने राष्ट्रीय प्रसारणकर्ता बोर्ड में चार नियुक्तियां कीं। बोर्ड के नवनियुक्त प्रमुख ने बताया कि युद्धकालीन 'कंफर्ट वुमैन' की व्यवस्था उस समय सभी देशों में थी और इसे आज की नैतिकता के आधार पर ही गलत ठहराया जा सकता है। एक अन्य निदेशक ने दावा किया कि नानजिंग नर संहार कभी हुआ ही नहीं और अमेरिका ने जापानी नेताओं के खिलाफ युद्ध अपराधों को इसलिए तोड़ा मरोड़ा ताकि अपने अपराधों को ढक सके।

जापान में शीत युद्ध के दौरान आत्मरक्षा बलों के नाम पर जमीन, हवा और पानी तीनों के सशस्त्र बलों का निर्माण किया गया। शीत युद्ध के बाद इन बलों को मानवाधिकारों की रक्षा और शांति रक्षा के नाम पर कंबोडिया, मोजांबिक, गोलन पहाड़ी, हैती और इराक में भेजा गया। जापान की सेना को घोषित तौर पर लड़ाई में भेजे जाने पर संवैधानिक रोक है, जिसे हटाने के लिए जापानी शासक वर्ग ढेर सारी कवायदें कर रहा है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जापान की रक्षा की जिम्मेदारी अमेरिका ने अपने ऊपर ओढ़ ली थी। जापान का ओकिनावा द्वीप एक तरह का अमेरिकी सैन्य उपनिवेश है। इसके बाहर भी अमेरिकी नागरिक और सैन्य बल दोनों तरह की मौजूदगी दिखाई देती है। फिलहाल, यह जापान और अमेरिकी साम्राज्यवादियों के बीच विवाद का विषय नहीं है, लेकिन अमेरिकी शासक वर्ग सतर्क हैं कि अबे की राजनीति जापान को उस दिशा में न ले जाए।

अबे के द्वारा खुले-छिपे तौर पर सैन्यवाद और अंधराष्ट्रवाद को बढ़ावा देने का नतीजा है कि वहां कोरिया और चीन के प्रति नफरत का माहौल बढ़ा है। देश में रह रहे कोरियाई लोग सीधे-सीधे नफरत फैलाने वाले भाषणों के निशाने पर होते हैं। यहां तक कि जापानी लोगों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर भी अंकुश लगा है। सरकार से किसी भी तरह के मतभेद को देशद्रोह की तरह चित्रित किया जाता है। मतभेद और मतभेद व्यक्त करने वाले दोनों को बहुत हिकारत के साथ खारिज किया जाता है।

ब्राजील

लातिन अमेरिका के देश विश्व बैंक -अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा निर्देशित ढांचागत समायोजन कार्यक्रम को लागू करने वाले सबसे पहले देश थे। इन्हीं देशों में इस कार्यक्रम के दुष्परिणामों के खिलाफ सबसे पहले जनाक्रोश पैदा हुए। इसी जनाक्रोश की लहर पर सवार होकर इनमें से कई देशों में तथाकथित समाजवादी सरकारें अस्तित्व में आईं। आज इन सभी सरकारों का दिवाला पिट चुका है। ब्राजील भी ऐसा ही देश है।

ब्राजील में वर्कर्स पार्टी के लूला डी सिल्वा के नेतृत्व में 2002 में तथाकथित वामपंथी सरकार सत्ता में आई। इस सरकार ने पुरानी सरकारों की आर्थिक नीतियों के केन्द्रीय तत्वों को जारी रखा लेकिन सरकार के पदों पर ट्रेड यूनियन कार्यकर्ताओं और जन आंदोलन के नेताओं को बिठाकर और कुछ राहत के कदमों को उठाकर काफी लोकप्रियता हासिल की। लूला के दूसरे शासनकाल में अर्थव्यवस्था की स्थिति भी कुछ सुधरी। कर, निवेश, रोजगार और आय में सुधार आया। लेकिन 2010 में डिल्मा रोसेफ के सत्ता संभालने के बाद स्थिति बिगड़ने लगी। वैश्विक आर्थिक संकट ने ब्राजील के पहले से समस्याग्रस्त बजट घाटे के संतुलन और व्यापार घाटे के संतुलन को बिगाड़ दिया। मुद्रा स्फीति की दर बढ़ने लगी और सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर घटने लगी। कर राजस्व गिर गया। मौसम ने भी बेरुखी दिखाई और देश के दक्षिण पूर्वी हिस्से में भयंकर सूखा पड़ा। डिल्मा ने अपने राहत के कदमों को छोड़ना शुरू किया, लेकिन विपक्ष अपने हमलों को और तेज कर रहा था।

इन सबके बावजूद डिल्मा 2014 में चुनाव जीत कर दुबारा सत्ता में आई इस दौरान अर्थव्यवस्था की हालत बिगड़ती गयी। सरकारी सेवाओं में असहनीय गिरावट आ रही थी। परिवहन को लेकर 2013 में और पानी की कमी को लेकर 2014-15 में काफी बड़े विरोध प्रदर्शन हुए। यह सब चीजें दक्षिणपंथी विपक्ष को ताकत प्रदान करती थीं।

इस पृष्ठभूमि में 2015 में सरकारी पेट्रोलियम कंपनी पेट्रोबास में भ्रष्टाचार के बड़े मामले उजागर हुए। यद्यपि इस भ्रष्टाचार में डिल्मा के व्यक्तिगत तौर पर शामिल होने का कोई आरोप नहीं था लेकिन तब भी वे दक्षिणपंथी विपक्ष द्वारा प्रायोजित आंदोलन के निशाने पर थीं। 2015 में बड़े प्रदर्शन डिल्मा पर महाभियोग लगाने की मांग को लेकर हुए। इस आंदोलन में मध्यम वर्ग की मुख्य भागीदारी थी। मध्यम एवं उच्च वर्ग को डिल्मा से शिकायत थी कि वे सरकारी पैसों को अयोग्य गरीबों में लुटा रही थीं। दक्षिणपंथी राजनीति से प्रभावित ये लोग यह भी मानते हैं कि सरकार का अर्थव्यवस्था में कोई हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए।

ये प्रदर्शन दक्षिणपंथी पार्टी पी डी एस बी के द्वारा प्रायोजित थे लेकिन यह पार्टी प्रदर्शनों की पृष्ठभूमि में छिपी रही ताकि प्रदर्शन स्वतःस्फूर्त दिखें। ऊपरी तौर पर प्रदर्शन का आह्वान सोशल मीडिया के जरिये हुआ जिसका कि मुख्यधारा के मीडिया ने समर्थन किया। इन प्रदर्शनों को अमेरिकी साम्राज्यवाद का भी भरपूर समर्थन था। लातिन अमेरिकी देशों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप के अमेरिकी साम्राज्यवादियों के कई तरीकों में से यह भी एक तरीका है। मीडिया और न्यायपालिका दोनों ने इस दौरान दोहरा चरित्र प्रदर्शित किया जब पी डी एस बी के अपने भ्रष्टाचार के मामले देश में न तो मुद्दा बने और न उन पर कार्यवाही हुई।

डिल्मा के खिलाफ प्रदर्शनों में शामिल लोगों में एक छोटी प्रवृत्ति अधिनायकवाद की भी थी जो कि देश की समस्याओं का समाधान सैन्य शासन के रूप में देखते थे।

दक्षिणपंथी राजनीति को मजदूरों में ले जाने का काम अंशतः तेजी से बढ़ रहे प्रोटेस्टेंट चर्चों ने भी किया। ये चर्च रूढ़िवादी मूल्यों के बड़े पैरोकार हैं। ये महिलाओं और समलैंगिकों के अधिकारों के प्रत्यक्ष विरोधी है। अफ्रीकी ब्राजीली धर्मों के प्रति पूर्वाग्रह फैलाने के रूप में ये छिपे नस्लवाद को बढ़ाने का भी काम करते हैं।

डिल्मा को अपने पद को छोड़ने के लिए मजबूर कर ब्राजील की दक्षिणपंथी ताकतों ने पूंजीवादी व्यवस्था की सीमाओं को भी उजागर कर दिया।

दक्षिण अफ्रीका

रंगभेद समाप्त होने के बाद से ही दक्षिण अफ्रीका में लगातार अफ्रीकी नेशनल कांग्रेस का शासन है। रंगभेद की समाप्ति का असर इस रूप में दिखाई पड़ रहा है कि एक समय की अश्वेतों से रहित शासक पार्टी लिबरल पार्टी का मुखिया आज एक अश्वेत है। लेकिन अन्य मामलों में दक्षिण अफ्रीका की लंबी मुक्ति की लड़ाई के सपने धूल-धूसरित हो चुके हैं। उस सपने का उससे बुरा हश्र क्या हो सकता था जब अगस्त, 2012 में पुलिस ने हड़ताली खनिकों पर अंधाधुंध गोली चलाई और 34 मजदूरों की जान ले ली।

आज दक्षिण अफ्रीका तरह-तरह की हिंसाओं का शिकार है। ये हिंसा विरोध प्रदर्शनों से भी संबंधित है तो स्वयंभू निगरानीकर्ताओं की हिंसा और विदेशियों के खिलाफ हिंसा से संबंधित भी। दक्षिण अफ्रीका में विदेशियों के प्रति नफरत विशेष तौर पर नौजवानों में काफी ज्यादा है। एक सर्वेक्षण में पाया गया कि एक तिहाई लोग मानते थे कि कानूनी-गैरकानूनी सभी विदेशियों को वापस उनके देश भेजा जाए। अधखुली सीमा की वजह से दक्षिण अफ्रीका में भारी संख्या में गैर कानूनी विदेशी लोग हैं।

रंगभेद की समाप्ति के बाद से दक्षिण अफ्रीका की राजनीति में अफ्रीकी नेशनल कांग्रेस का लगभग एकाधिकार रहा है। लेकिन पिछले कुछ सालों में ऐसी प्रतिद्वन्द्वी पार्टियों जो कि नेल्सन मंडेला और मुक्ति संघर्ष की विरासत पर दावेदारी कर रही हैं, ने अफ्रीकी नेशनल कांग्रेस के जनाधार में सेंधमारी करनी शुरू कर दी है। नतीजतन अफ्रीकी नेशनल कांग्रेस का शहरों में वोट प्रतिशत गिरा है। हालांकि ग्रामीण मतदाताओं (कुल मतदाताओं का लगभग 35 प्रतिशत) में यह अभी अक्षुण्ण है। इस बदलते परिदृश्य में पार्टी गावों के पारंपरिक मुखियाओं के साथ नजदीकी कायम करने की तरफ बढ़ी है। महिलाओं के प्रति अपनी रुढ़िवादी मान्यताओं की वजह से ये मुखिया महिला अधिकारों के विरोधी हैं। एक ऐसे देश में जहां महिलाओं में अपने अधिकारों की चेतना बढ़ रही है, ऐसे कदम महिलाओं के प्रति हिंसा को बढ़ाने का काम कर रहे हैं। दुनिया की "बलात्कार राजधानी" कहे जाने वाले देश में सत्ताधारी पार्टी के ऐसे कदमों से ज्यादा नुकसानदेह चीज क्या हो सकती है।

इजरायल

1970 के दशक तक इजरायली राज्य तथाकथित लोक कल्याणकारी राज्य के ढांचे पर आधारित था। इजरायल यहूदी आबादी के बीच आय के वितरण के मामले में पूंजीवादी दुनिया का सबसे ज्यादा समतामूलक समाज था। इसके बाद से यहां की दोनों मुख्य पार्टियों लेबर और लिकुड की सरकारों द्वारा भारी पैमाने पर निजीकरण की प्रक्रिया शुरू की गई। बड़े सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को विखंडित कर बेच दिया गया। सरकारी सेवाएं आउटसोर्स और खस्ताहाल हो गयीं। इसी के समानान्तर इजरायली राज्य और राजनीति दोनों अधिनायकवाद की तरफ बढ़े। इसके लिए उन्होंने बहाना फिलिस्तीनी छापामार संघर्ष को बनाया।

1980 से इजरायल फिलिस्तीन संघर्ष ने छापामार रूप ले लिया। इजरायल ने इसका जवाब निगरानी तंत्र को मजबूत कर, लक्षित हत्याओं, बड़े पैमाने की गिरफ्तारियों, पुलिसिया पूछताछ और समय-समय पर होने वाले हवाई हमलों द्वारा दिया। चूंकि इन सब से कोई समाधान नहीं निकलना था, इसलिए इसने एक सतत् असुरक्षा का वातावरण तैयार किया। इस वातावरण में मानवाधिकार का कोई मूल्य नहीं था। भय और घृणा 'अन्य' के प्रति पूर्वाग्रह पैदा करते थे और उन पर मनगढंत आरोप लगाना और उन्हें बलि का बकरा बनाना आसान बनाते थे।

इस सबने इजरायल में घोर दक्षिणपंथी राजनीति के लिए उपजाऊ जमीन तैयार की। यद्यपि दुनिया के अलग-अलग हिस्सों से आकर बसने की वजह से इजरायल के यहूदी आपस में काफी भिन्न थे। तब भी दक्षिणपंथियों ने यहूदी राष्ट्रवाद का नारा बुलंद किया और यहूदी श्रेष्ठता को प्रत्यक्ष तौर पर स्थापित किया। इनके निशाने पर इजरायल के भीतर रह रहे फिलिस्तीनी मूल के नागरिक भी थे।

इजरायल के भीतर 20 प्रतिशत नागरिक फिलीस्तीनी मूल के हैं। ये 1948 के जातीय सफाये के बाद भी इजरायल में बच गये फिलिस्तीनियों की संतानें हैं। इन्हें तभी से भेदभाव का सामना करना पड़ रहा है। ये इजरायली आबादी के सबसे गरीब लोग हैं। इन्हें शिक्षा, स्थानीय शासन के संसाधनों, आवास, जनकल्याण, अवसरों आदि में भेदभाव का शिकार होना पड़ता है और ये नस्लभेद के शिकार होते हैं। यद्यपि इन्हें वोट डालने का अधिकार हासिल है, किन्तु इन्हे काफी व्यवस्थित तरीके से सरकार से बाहर रखा जाता है।

2007-08 के विश्व आर्थिक संकट ने इजरायल पर भी असर डाला। 2011 में इजरायल में आवास और महंगे मकान किराए को लेकर बड़ा प्रदर्शन हुआ। इस प्रदर्शन में पांच लाख लोगों ने भागीदारी की। ऐसे माहौल में इजरायल की राजनीति और भी ज्यादा दक्षिणपंथ की तरफ खिसकी। लिकुड पार्टी का तो अन्य घोर दक्षिणपंथी पार्टियों से फर्क ही मिट गया। लेबर पार्टी भी अब किसी भी मुद्दे पर अरब या फिलीस्तीन समर्थक नहीं दिखना चाहती थी। इसके बावजूद यह 2013 और 2015 का चुनाव हार गयी।

लिकुड पार्टी के मंत्री एक से बढ़कर एक फिलीस्तीनियों के विरोध में बयान देने लगे। एक मंत्री ने कहा कि फिलीस्तीनी लोग इजरायली लोगों के साथ बैठकर बस में यात्रा नहीं कर सकते। यह भी कहा कि उन थियेटरों को कोई सब्सिडी नहीं दी जा सकती है जो इजरायल की वैधता को नहीं स्वीकारते। साफ है कि इसका निशाना फिलीस्तीनी थियेटर थे। गृहमंत्री ने घोषणा की कि ऐसा कानून बनाया जाय जिससे भूख हड़ताल कर रहे जेल कैदियों को जबरन नली द्वारा भोजन दिया जा सके। यह इसके बावजूद था कि इजरायली मेडिकल एसोसिएशन ने ऐसे कानून को लागू करने से मना कर दिया क्योंकि यह जीवन को खतरे में डालता है और यातना का एक रूप है। विपक्ष के एक घोर दक्षिणपंथी नेता ने कहा कि वे इस कानून का विरोध करेंगे और कहा कि फिलीस्तीनी कैदी अगर मरना चाहते हैं तो उन्हें मरने दिया जाय।

इन सबका असर सामान्य इजरायली नागरिकों के जनवादी अधिकारों पर भी पड़ रहा है। सभी प्रमुख विश्वविद्यालयों में ऐसे स्वयंभू निगरानीकर्ता (Vigilants) पैदा हो गये हैं जो व्याख्यानों के वामपंथी कंटेंट की निगरानी, सेंसर और दबाने का काम करते हैं। एक अन्य संगठन सिविल सोसाइटी और मानवाधिकार संगठनों की निगरानी और सेंसर के लिए गठित हो गया है।

इजरायल में राजनीतिक राय को भी आपराधिक श्रेणी में डाला जा रहा है। 1948 के फिलीस्तीनी नकबा (इजरायल से फिलीस्तीनीयों का पलायन) की याद में शोक दिवस मनाने पर कानूनी रोक है। पिछले कुछ वर्षों में यह प्रयास हो रहा है कि उच्च न्यायालय की स्वायत्तता कम की जाए और इसे विधायी और कार्यपालिका की शक्तियों के अधीन किया जाए।

यूक्रेन

सोवियत संघ के विघटन के बाद यूक्रेन में खुला पूंजीवाद कायम हुआ। इसके बाद से पश्चिमी साम्राज्यवादी यूक्रेन को अपने प्रभाव में लेने की कोशिश करने लगे। जब तक रूस अपनी आंतरिक समस्याओं में उलझा हुआ था तब तक उनके लिए कोई बाधा भी नहीं थी। लेकिन जब रूस ने अपनी आंतरिक स्थिति सुदृढ़ कर ली तो उसने भूतपूर्व सोवियत संघ के देशों पर अपना प्रभाव बढ़ाना शुरू किया। इस वजह से यूक्रेन के भीतर पश्चिमी साम्राज्यवादियों और रूसी साम्राज्यवादियों के बीच टक्कर शुरू हो गयी।

इस टक्कर में पश्चिमी साम्राज्यवादियों ने बढ़त हासिल करने के लिए दक्षिणपंथी राष्ट्रवादी और फासीवाद समर्थक समूहों का इस्तेमाल किया। 2014 में पश्चिमी साम्राज्यदियों द्वारा प्रायोजित मैदान (इंडेपेंडेंस स्क्वायर के लिए यूक्रेनी शब्द) आंदोलन में रूस समर्थित यानुकोविच को सत्ता गवानी पड़ी और चॉकलेट किंग पोरोशेंको सत्तानशीन हुए। लेकिन इससे संघर्ष समाप्त नहीं हुआ। रूस ने क्रीमिया

पर कब्जा कर लिया और यूक्रेन के भीतर अलगाववादी आंदोलन को बढ़ावा देने लगा। आज भी दोनेत्स्क और लुगांस्क में यूक्रेन से अलग होने के लिए संघर्ष चल रहा है।

यूक्रेन के शेष हिस्से में भी स्थिति बुरी बनी हुई है। नए शासकों ने हर तरह से सामाजिक राहत के कार्यों में कटौती कर दी। पिछली पार्टियां या तो प्रतिबंधित हैं या सतत् दबाव में हैं। जो लोग नागरिक अधिकारों के पक्ष में बात करते हैं उन्हें परेशान किया जाता है और पीटा जाता है। मतभेद को कुचला जाता है। आधिकारिक मीडिया सफेद झूठ प्रसारित करती है और क्रूर सेंसर लागू करती है।

यूक्रेन के संघर्ष का रूस ने दोहरा लाभ लिया। एक तो यूक्रेन और अन्य देशों में अपना प्रभाव बढ़ा लिया। दूसरा रूस में यूक्रेन जैसे मैदान आंदोलन का हौव्वा खड़ा कर राष्ट्रपति पुतिन और उनके सहयोगियों के हाथ में ढेर सारी ताकत केन्द्रित कर ली गयी। यह कहा गया कि ऐसा नहीं करने पर अव्यवस्था, फासीवादी तख्ता पलट और गृहयुद्ध का खतरा है।

भारत

भारत में आज फासीवाद का खतरा किसी भी समय से सबसे ज्यादा है। भाजपा, कांग्रेस समेत सभी पूंजीवादी पार्टियों के निजीकरण-उदारीकरण-वैश्वीकरण की पक्षधर होने की बात इन सभी पार्टियों की सरकारों द्वारा उजागर की जा चुकी है। अब इन नीतियों के संबंध में एक दूसरे से किसी फर्क की ये पार्टियां प्रायः कोई दावा नहीं करती। इन नीतियों के परिणाम भारी बेरोजगारी, भारी असमानता, मजदूरों के काम के घंटे बढ़ने और उनके सभी श्रम अधिकारों के कमजोर हो जाने, छोटे मझोले किसानों की बर्बादी, आदि के रूप में समस्त मजदूर-मेहनतकश जनता को झेलने पड़ रहे हैं। ऐसे में पूंजीपति वर्ग अपनी सत्ता पर खतरे की किसी स्थिति में संसदीय लोकतंत्र को तिलांजलि दे सके इसकी पूरी तैयारी कर रहा है। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का अपने भांति-भांति के संगठनों के द्वारा जनता के सभी हिस्सों में आधार होना उसके लिए फासीवाद की राह को आसान बनाता है।

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की स्थापना 1925 में हुई थी। यह अपनी स्थापना के समय से ही मुसोलिनी की विचारधारा से प्रभावित था। गुलाम भारत में आजादी के संघर्ष के तीखे होने और आजादी के बाद आजादी के आंदोलन में निभायी गयी नकारात्मक भूमिका की वजह से लंबे समय तक यह हाशिये पर रहा। भारत-चीन युद्ध और बिनोवा भावे-जयप्रकाश आंदोलन का इस्तेमाल इसने अपने आधार को विस्तारित करने के लिए किया। कांग्रेस का नरम हिंदुत्व भी लगातार संघ के लिए अनुकूल माहौल बनाए रखने का काम करता था। इन सब वजहों से भारत के सामाजिक तानेबाने के काफी बदल जाने के बावजूद संघ का भारत को हिंदू राष्ट्र बनाने का सपना जिंदा रहा। हालाकि देश का बदलता राजनीतिक सामाजिक परिदृश्य इनको अपने सपने को खुलकर व्यक्त करने से रोकने लगा। अब ये अपने गुरू गोलवलकर की कही कई बातों पर चुप्पी साधकर ही अपने सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के एजेंडे को प्रस्तुत करने योग्य बना सकते थे। जब 1998 से 2004 तक इनका चुनावी संगठन भारतीय जनता पार्टी सत्ता में था, तो राजनीतिक मजबूरियों की वजह से इन्हें अपने हिंदू राष्ट्र के एजेंडे को कोल्ड स्टोरेज में रखना पड़ा।

लेकिन 2010 के बाद विश्व आर्थिक संकट का असर भारतीय अर्थव्यवस्था पर दिखाई देने लगा तो भारत में एक नयी परिस्थिति पैदा होने लगी। अब देश का पूंजीपति वर्ग खासतौर पर एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग ऐसे शासन की जरूरत महसूस करने लगा जो चुनावी गठबंधनों की बाधाओं से मुक्त हो और जिसका मुखिया कठोर एवं त्वरित फैसले लेने में सक्षम हो। नरेन्द्र मोदी में ऐसे अधिनायकवादी शासक की खूबियां मौजूद होने की वजह से पूंजीपति वर्ग उस पर दांव लगाने की तरफ आगे बढ़ा। पूंजीवादी मीडिया का पूरा लाड़ प्यार 2014 के लोकसभा चुनाव से पहले नरेन्द्र मोदी को मिलना शुरू हो गया जो अब तक जारी है। इस स्थिति में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ने भी अपना समर्थन मोदी को दे दिया।

नरेन्द्र मोदी ने सत्ता संभालने के बाद पूंजीपति वर्ग की मांगों को धड़ल्ले से पूरा किया। संप्रग शासन की नीतिगत गतिरोध की स्थिति को मोदी ने समाप्त किया और भारत को साम्राज्यवादी संस्थाओं से भी कारोबार की स्थिति सुधारने के सर्टिफिकेट मिलने लगे। मोदी के इन कदमों ने मजदूर मेहनतकश जनता की पहले से खस्ताहाल स्थिति को और खराब कर दिया। इसके परिणामस्वरूप मजदूरों-किसानों -छात्रों-नौजवानों-दलितों-महिलाओं आदि जनता के तमाम हिस्सों के संघर्ष तेज हो गये।

मोदी के शासन से सिर्फ पूंजीपति वर्ग ही खुश नहीं था। मोदी के सत्ता संभालने से संघ की लंपट वाहिनियों के भी हौसले बुलंद हो गए। इस दौरान लगातार होने वाले प्रदेशों के चुनाव और उपचुनाव की वजह से संघ और मोदी के लिए इनकी सेवाएं बेशकीमती थीं। मीडिया का एक हिस्सा तो अत्यंत आक्रामक तरीके से संघी राष्ट्रवाद का प्रवक्ता बन गया। इतिहास, विज्ञान सभी को संघी पोंगापंथ की सेवा में लगा दिया गया। भीड़ के न्याय को तरह-तरह से उकसावा दिया जाने लगा। इस जहरीले माहौल का निशाना तर्कवादी- प्रगतिशील बुद्धिजीवी, मुस्लिम-इसाई, दलित, आदि बनने लगे। राज्य और सरकार के खिलाफ चलने वाले अहिंसक-सशस्त्र सभी आंदोलनों को पूरी बर्बरता के साथ कुचला जाने लगा। यह सब दिखा रहे हैं कि भारत लगातार फासीवाद के नजदीक पहुंचता जा रहा है।

भारतीय समाज के संकटों के इतना तीखा हो जाने के बावजूद भारत का पूंजीपति वर्ग किसी हद तक निश्चिंत दिखाई देता है। उसकी आंशिक निश्चिंतता की वजह यह है कि अपनी व्यवस्था पर खतरे की किसी स्थिति में उसके समाधान के उपकरणों को वह लगातार मजबूत करता जा रहा है। यह समाधान एक पार्टी की तानाशाही, सैनिक तानाशाही या फासीवादी तानाशाही कोई भी हो सकती

है। फासीवादी तानाशाही कायम करने में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ जैसे मजबूत पैठ वाले संगठन की मौजूदगी उसकी निश्चिंतता का अतिरिक्त कारण है। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जो कि फासीवाद की जरूरतों को पूरा करने के लिए इसे बहुत उपयोगी बनाती है। संघ शुरू से ही फासीवादी संगठन रहा है। इसका ढांचा हिटलर मुसोलिनी की पार्टियों से मिलता जुलता है। यह एक अर्द्ध गुप्त संगठन है जिसके शीर्ष पर सरसंघचालक होता है। उसके आदेश पर कोई सवाल नहीं किया जा सकता। इसके भीतर चुनाव की कोई प्रणाली नहीं है। सभी पदाधिकारियों का मनोनयन किया जाता है। कार्यकर्ताओं से लेकर सरसंघचालक तक की पूरी शृंखला एक फासीवादी ढांचे का निर्माण करती है। इसका वैधानिक अर्ध वैधानिक संस्थाओं का एक लंबा चौड़ा जाल है। हिंसा के तरीकों, आतंकी एवं गैर कानूनी कार्यवाहियों में इनके ढेरों कार्यकर्ता प्रशिक्षित होते हैं एवं इसके लिए जरूरी शस्त्रास्त्र का इनके पास भंडार है। इनका सांस्कृतिक राष्ट्रवाद हिंदू धर्म की श्रेष्ठता, अखण्ड भारत, आक्रामक सैन्यवाद, वर्णव्यवस्था समर्थक, नारी विरोधी व केन्द्रीकृत-एकीकृत शासन का पक्षधर है। ये अल्पसंख्यकों के साथ-साथ कम्युनिस्टों व वर्ग संघर्ष के विरोधी हैं।

भारत की अन्य पार्टियों की भूमिका कुछ ऐसी है कि ये हिन्दू फासीवाद के स्थापना में मददगार ही बन जाते हैं। कांग्रेस अपने नरम हिंदुत्व की वजह से संघ- भाजपा को कोई मजबूत वैचारिक चुनौती नहीं दे सकती। अन्य पूंजीवादी पार्टियों, क्षेत्रीय पार्टियों का रिकार्ड इतना खराब है कि किसी के बारे में यह गारंटी नहीं दी जा सकती कि अपनी सत्तालोलुपता की वजह से ये हिंदू फासीवाद को स्थापित होने में मदद न दें या हिंदू फासीवाद के द्वारा इस्तेमाल न हो जाएं। संशोधनवादी पार्टियां वैसे तो मानती हैं कि हिंदू सांप्रदायिकता पर सवार होकर संघ-भाजपा राज्य के अधिनायकवादीकरण को तेज कर रही है और फासीवाद का खतरा बढ़ रहा है, लेकिन इनके संसदीय जड़वामनवाद की वजह से ये इसका मुकाबला नहीं कर सकतीं। फासीवादी आंदोलन संबंधी इनका सारा विश्लेषण चुनावी जोड़-तोड़ के मद्देनजर किया जाता है।

इस तरह हम पाते हैं कि घोर दक्षिणपंथी एवं नवफासीवादी उभार एक विश्वव्यापी परिघटना है। अलग-अलग देशों में यह अलग-अलग रूप में नजर आता है। लेकिन, तब भी कुछ आम बातें हैं जो सामान्यतया सभी देशों में पायी जाती हैं। इस उभार का संबंध पूंजीवाद के संकट से है। जैसे-जैसे यह संकट गहराता गया है, ऐसी पार्टियां जो कि संकटजन्य समस्याओं का समाधान जनता के किसी कमजोर हिस्से (अप्रवासी, अल्पसंख्यक, मुसलमान, अश्वेत आदि) के नियंत्रण और बहिष्करण में और राज्य की ताकत को बढ़ाने के रूप में देखती हैं, उनकी गतिविधियां और आधार दोनों बढ़े हैं। इन पार्टियों ने निजीकरण-उदारीकरण-वैश्वीकरण के प्रति जनता के गुस्से को भुनाने का काम किया है। इन्होंने देश की राजनीति को 'अभिजात' बनाम 'धरतीपुत्र' के मुहावरे में पेश किया और अपने आपको धरती पुत्रों का हिमायती बताया। पुरानी स्थापित पार्टियों को ये अभिजातों के रूप में पेश करते हैं जिनके बारे में ये कहते हैं कि इन्होंने अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के दबाव में धरतीपुत्रों का साथ छोड़ दिया है और विदेशी, अप्रवासी आदि के लिए सरकारी खजाने को लुटाया है। इस वजह से धरती पुत्रों को मिलने वाली सरकारी राहत कम हो जाती है। ऐसे समय में जब सरकारें लगातार जनता के कल्याण के खर्चों में कटौती कर रही हैं, ये पार्टियां सरकार के इस कदमों के खिलाफ संघर्ष को भटकाती हैं और उसे सरकारी योजनाओं के लाभार्थी में से अपने द्वारा लक्षित दुश्मन को बाहर निकालने की लड़ाई की तरफ मोड़ देती हैं। ये पार्टियां यूरोपीय यूनियन आदि अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं का विरोध करती हैं और अपने देश को इन संस्थाओं से बाहर निकालने की मांग करती हैं। लेकिन ऐसा ये साम्राज्यवाद विरोध की जमीन से नहीं बल्कि अंधराष्ट्रवाद की जमीन से करती हैं। ये पार्टियां अंतर विश्वयुद्ध कालीन नाजीवाद-फासीवाद की विरासत को सामान्यतः अस्वीकार करती हैं, लेकिन उस जमाने के प्रतीकों, तर्कों, मुहावरों, तरीकों से काफी कुछ उधार लेती हैं। कई पार्टियां इस दौर के शासन को सकारात्मक रूप में स्वीकार करती हैं। इनके प्रचार के प्रभाव में मध्यम वर्ग अपेक्षाकृत ज्यादा आसानी से आया है और इनके नेता-कार्यकर्ता अधिकांशतः इसी वर्ग के होते हैं। मजदूर वर्ग के एक हिस्से में भी इनका प्रभाव कायम होता जा रहा है। इनके प्रभाव में आने वाला यह हिस्सा अंतरविश्वयुद्ध काल में नाजीवाद-फासीवाद के प्रभाव में आने वाले हिस्से की तुलना में बड़ा है। इसका एक प्रमुख कारण वर्तमान समय में पूरी दुनिया के स्तर पर सामाजिक जनवादियों और कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों दोनों की कमजोर स्थिति है। इन दक्षिणपंथी पार्टियों के नारी विरोधी होने की वजह से महिलाओं के बीच इनका असर कम होता है और इनके ज्यादातर कार्यकर्ता पुरुष होते हैं। नौजवानों के बीच ये पार्टियां अपनी ज्यादा ऊर्जा केन्द्रित करती हैं। ये इतिहास को तोड़ती मरोड़ती हैं और शिक्षा व्यवस्था को अपनी जरूरत के हिसाब से ढालने की कोशिश करती हैं। ये मार्क्सवाद और बीसवीं सदी के समाजवाद के प्रति काफी आक्रामक रुख रखती हैं। ये अपनी राजनीति को फैलाने के लिए सोशल मीडिया का काफी घृणित तरीके से इस्तेमाल करती हैं। गाली-गलौच, झूठी अफवाह, झूठी तस्वीरें, नफरत फैलाने वाली बातें इनकी खासियत होती हैं। स्थापित पूंजीवादी मीडिया में जगह बनाना भले ही वह नकारात्मक ही हो इनके लिए काफी फायदेमंद हो जाता है। एक सशक्त और निरंकुश नेता को जनता की आकांक्षा पूरी होने के लिए ये जरूरी बताती हैं और जनमत संग्रह को नियमित अंतराल पर होने वाले संसदीय चुनाव के बरक्स खड़ा करती हैं। ये अपने-अपने देशों के संविधान का अपने आप को असली रक्षक बताती हैं और पुरानी स्थापित पार्टियों द्वारा बदलते समय के हिसाब से किये गये संशोधनों को संविधान के अनादर के रूप में पेश करती हैं। ये सामान्यतः अपने आप के उदार जनवाद के विरोधी होने के आरोप को खारिज करती हैं। चुनाव लड़ने वाली पार्टियां चुनावी सफलता हासिल करने के मकसद से अपने किन्हीं मुद्दों पर अपनी उग्रता को बढ़ाती या कम करती रहती हैं। जहां द्वितीय विश्वयुद्ध से पहले फासीवाद के खिलाफ लड़ाई तीसरी दुनिया के देशों में साम्राज्यवाद विरोधी लड़ाई का रूप ले लेती थी वहीं आज तीसरी दुनिया के देशों में भी पूंजीवादी व्यवस्था स्थापित हो जाने की वजह से फासीवाद को इन देशों के भीतर भी रोकने का कार्यभार आ उपस्थित हुआ है।

III

वर्तमान घोर दक्षिणपंथी एवं नव फासीवादी उभार के प्रति विभिन्न वर्गों की पहुंच

वर्तमान घोर दक्षिणपंथी एवं फासीवादी उभार के प्रति अलग-अलग वर्गों की अलग-अलग पहुंच है। यह अलग-अलग वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाली पार्टियों की नीतियों में और उनके व्यवहार में देखा जा सकता है।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद लंबे समय तक दुनिया के ढेरों देशों में घोर दक्षिणपंथी पार्टियों को पूंजीपति वर्ग का या तो बहुत सीमित समर्थन या नहीं के बराबर समर्थन मिला। चूंकि ऐसी पार्टियां पूंजीपति वर्ग की सुरक्षा पंक्ति होती हैं, इसलिए इन्हें बस अपना अस्तित्व बचाए रखने का मौका दिया गया। लेकिन 1970 के दशक से इन्हें लगातार बढ़ती मात्रा में पूंजीपति वर्ग का समर्थन मिलने लगा। इसके समानांतर पुरानी स्थापित पार्टियों का इनके प्रति विरोध कम होता गया। इन पार्टियों का विरोध करने पर भी जनता को बांटने और जनता के बीच नफरत फैलाने वाले मुद्दों के प्रति पुरानी स्थापित पूंजीवादी पार्टियों का रुख नरम होता गया है। पुरानी स्थापित पार्टियों ने आप्रवासन, देश की असुरक्षा आदि मुद्दों को ध्यान देने योग्य बताना शुरू कर दिया और इनके संबंध में कदम भी उठाये। जरूरत पड़ने पर पुरानी स्थापित पार्टियों ने घोर दक्षिणपंथी एवं नवफासीवादी पार्टियों के साथ गठबंधन सरकारें भी बनायीं। पुरानी स्थापित पार्टियां निजीकरण-उदारीकरण-वैश्वीकरण संबंधी मुद्दों पर घोर दक्षिणपंथी और नवफासीवादी पार्टियों का ज्यादा विरोध करती हैं। लेकिन इस विरोध के दौरान ये वामपंथी और कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों को भी इनके साथ लपेट देती हैं और इनके बीच के फर्क को अनदेखा करते हुए इन्हें 'लोकरंजकवादी' के एक आम प्रवर्ग में डाल देती हैं। लोकरंजकवाद के बरक्स अपने आप को आर्थिक सुधारों का पक्षधर बताते हुए अपने को ये सुधारवादी कहती हैं। पुरानी स्थापित पूंजीवादी पार्टियां कहती हैं कि लोकरंजकतावादी पार्टियों की सोच देश के विकास के लिए खतरनाक है और वे इन्हें कानून और व्यवस्था के लिए भी खतरा बताती हैं। इस खतरे से निपटने के लिए ये पुलिस और खुफिया एजेंसियों को मजबूत करने और नए तौर तरीके विकसित करने की बात करती हैं। आज निगरानी व्यवस्था के अधिकार को उस हद तक बढ़ाया जा रहा है जहां ये नागरिकों के अधिकारों के लिए खतरा बनने लगे हैं। कानून व्यवस्था को बिगाड़ने से पहले ही रोक थाम के नाम पर पुलिस व्यवस्था के ऐसे तौर तरीके विकसित किये जा रहे हैं जिससे धरना-प्रदर्शन करना काफी कठिन हो जाता है और सामान्य नागरिक आबादी की इनमें भागीदारी कठिन हो जाती है। वैश्वीकरण विरोधी कई प्रदर्शनों में पुलिस ने प्रदर्शनकारियों के चारों ओर मजबूत घेराबंदी कर उन्हें सामान्य नागरिक आबादी से काट दिया और एक-एक प्रदर्शनकारी के नाम-पते दर्ज करने के बाद उन्हें जाने दिया। इस तरह पुरानी स्थापित पूंजीवादी पार्टियां न केवल स्वयं भी और ज्यादा दक्षिणपंथ की तरफ खिसकी हैं बल्कि राज्य के अधिनायकवादीकरण की तरफ भी बढ़ी हैं।

सामाजिक जनवादी पार्टियां घोर दक्षिणपंथी एवं नवफासीवादी उभार को एक खतरे के बतौर तो चिह्नित करती हैं लेकिन अंतरविश्वयुद्धकालीन नाजीवाद-फासीवाद से वर्तमान उभार के फर्कों के आधार पर नाजीवाद-फासीवाद से लड़ने के उस समय के तौर तरीकों को सिरे से खारिज करती हैं। इस उभार से लड़ने में मजदूर वर्ग की केन्द्रीय भूमिका से वे इस या उस कारण से इंकार करती हैं। इसके बरक्स वे मानवाधिकार संगठन, सिविल सोसाइटी, एन जी ओ आदि के साथ एकता कायम करने पर जोर देती हैं। वैश्वीकरण का विरोध करने के बावजूद अंतर्राष्ट्रीय साम्राज्यवादी संस्थाओं को भंग करने या अपने देश को इनसे अलग करने की मांग को वे विरोध करती हैं। वे कहती हैं कि ऐसा करने से देशों के बीच के संबंध बिगड़ेंगे और राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय अस्थिरता बढ़ जायेगी। घोर दक्षिणपंथी एवं नवफासीवादी पार्टियों के कई सारी अंतर्विरोधी स्थिति की तरफ इशारा करते हुए वे दिवास्वप्न पालती हैं कि अगर इनके अपने कार्यकर्ता जनता के बीच ईमानदारी और मेहनत से जनता के हक में बढ़-चढ़ कर काम करें तो वर्तमान व्यवस्था के दायरे में ही घोर दक्षिणपंथी एवं नवफासीवादी पार्टियों के खतरे से निपटा जा सकता है।

ये ग्रीस की सिरिजा पार्टी को अपने मॉडल के बतौर प्रस्तुत करती हैं। लेकिन सिरिजा का अब तक हुआ हश्र ही इनके मॉडल के दिवालियेपन को दिखा देता है। सिरिजा पार्टी ग्रीस की जनता के बीच साम्राज्यवादियों के बेलआउट पैकेजों की शर्तों के खिलाफ गुस्से की लहर पर सवार होकर सत्ता में आई। लेकिन, सत्ता में आने के बाद इन्होंने वित्तपूंजी के दबाव में आकर घुटने टेक दिये और उनकी शर्तों को मंजूर कर लिया। सिरिजा के सत्ता में रहने के बावजूद ग्रीस की घोर दक्षिणपंथी पार्टी गोल्डन डॉन (Golden dawn) का प्रभाव कहीं से कम नहीं हुआ है। यह तब है जबकि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद लंबे समय तक अधिनायकवादी शासन की वजह से ग्रीस की जनता में अधिनायकवाद की स्वीकार्यता कम है। जैसे-जैसे जनता की समस्याओं को हल करने में सिरिजा की असफलता ज्यादा से ज्यादा उजागर होती जायेगी, वैसे-वैसे विरोधियों के द्वारा सिरिजा को सत्ता से हटाना आसान होता जायेगा। इन विरोधियों में गोल्डन डॉन की मजबूत स्थिति हो सकती है। लैटिन अमेरिका के कई देशों (ब्राजील, वेनेजुएला, आदि) के दक्षिणपंथी आंदोलनों से भी इसे समझा जा सकता है।

घोर दक्षिणपंथी एवं नवफासीवादी उभार जो चुनौतियां पेश कर रहा है, उनका सामना करने में संशोधनवादी पार्टियां और उनकी यूनियनें अक्षम हैं। ये फासीवाद के खतरे को स्वीकारने और इससे लड़ने की जरूरत के बारे में तो बातें करती हैं, लेकिन इनकी सारी बातों और घोषणाओं का व्यवहारिक मतलब पूंजीवादी व्यवस्था की रक्षा करना होता है। अपने जनाधार को जिस हद तक ये संघर्ष

में उतारती भी हैं, तो उसकी परिणति संसदीय चुनावों में लाभ के रूप में देखने तक ये सीमित रहती हैं। ये कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों से एकता कायम करने की जगह पूंजीवादी पार्टियों के साथ एकता कायम करने में ज्यादा दिलचस्पी लेती हैं।

वर्तमान घोर दक्षिणपंथी एवं फासीवादी उभार के प्रति मजदूर वर्ग के पहुंच के निर्धारण में इस बात का बहुत महत्व है कि अलग-अलग देशों में यह उभार फासीवादी तानाशाही होने से पहले के फासीवादी आंदोलन की अवस्था में हैं या वहां फासीवादी तानाशाही स्थापित हो चुकी है। दिमित्रोव कहते हैं :

> "हम अराजकतावादी नहीं हैं और हम इस मामले में उदासीन नहीं रह सकते हैं कि किसी देश विशेष में किस प्रकार की राजनीतिक हुकूमत अस्तित्व में है : वहां पूंजीवादी जनवाद के रूप में पूंजीवादी तानाशाही है, चाहे उसमें जनवादी अधिकारों और स्वतंत्रता में कितनी ही कटौती क्यों न कर दी गयी हो अथवा वहां अपने खुले फासिस्ट रूप में पूंजीवादी तानाशाही मौजूद है?" (पृष्ठ-101, वही)

दुनिया के प्रायः सभी देशों में यह उभार अधिक से अधिक बहुत मजबूत फासीवादी आंदोलन के रूप में मौजूद है और अभी इन देशों में फासीवादी तानाशाही कायम नहीं हुई है। अभी इन देशों में अलग-अलग पूंजीवादी पार्टियों सत्ता में आने के लिए पूंजीवादी चुनावों के इस्तेमाल की कार्यनीति पर ही अमल कर रही हैं, और इस तरीके से सत्ता में अदला-बदली चलती रह रही है। लेकिन निकट भविष्य में किन्हीं देशों में खुली फासीवादी तानाशाही कायम हो जाने की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता। इस तरह के देशों के लिए कम्युनिस्ट इंटननेशनल की सातवीं कांग्रेस द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव का यह हिस्सा अत्यंत प्रासंगिक है :

> "3. समस्त पूंजीवादी देशों में फासिज्म के खतरे की वृद्धि पर जोर देते हुए कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की सातवीं कांग्रेस फासिस्ट खतरे को किसी भी किस्म से घटाकर आंकने के खिलाफ आगाह करती है। कांग्रेस फासिज्म की अपरिहार्यता के बारे में भाग्यवादी विचारों को भी अस्वीकार करती है। ये विचार मूलतः गलत हैं और केवल निष्क्रियता को ही जन्म दे सकते हैं तथा फासिज्म के खिलाफ जनसंघर्ष को कमजोर बना सकते हैं। अगर मजदूर वर्ग अपने संघर्ष में एकता कायम करने में सफल होता है और फौरन स्वयं अपनी जुझारु कार्रवाई विकसित करके फासिज्म को शक्ति नहीं संचित करने देता है; अगर वह सही क्रांतिकारी नेतृत्व द्वारा शहर और गांवों में मेहनतकशों के व्यापक तबकों को स्वयं अपने गिर्द गोलबंद करने में सफल होता है, तो वह फासिज्म की विजय को रोक सकता है।" (पृष्ठ-120, वही)

आज दुनिया के कई देशों में फासीवाद की विजय को रोकना मजदूर वर्ग का प्रमुख कार्यभार बन गया है। फासीवाद की विजय को रोकने के एक तो जरूरी है कि मजदूर वर्ग हर स्तर पर कार्रवाई की एकता कायम करे और संकट का बोझ अपने से हटाकर पूंजीपति वर्ग पर डालकर उसके संकट को तीखा करे तथा दूसरा सही क्रांतिकारी नेतृत्व के झंडे तले व्यापक मेहनतकश आबादी को गोलबंद करे। फासीवाद की विजय को रोकने के लिए मजदूर वर्ग की जरूरी कार्रवाई की एकता के लिए जरूरी है कि कम्युनिस्ट क्रांतिकारी अपने-अपने देशों की परिस्थितियों का ठोस मूल्यांकन करें, मजदूर वर्ग और खास तौर पर सामाजिक जनवादी मजदूरों के बीच क्रांतिकरण की स्थिति तथा आगे की संभावनाओं का मूल्यांकन करें तथा परिस्थितियों के विकासक्रम के अनुरूप सही योजना बनाएं। लेकिन सही योजना बना लेने मात्र से फासीवाद की विजय को रोका नहीं जा सकता। सही लाइन तय हो जाने के बाद इसको अमल में लाने वाले लोगों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है।

कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की सातवीं कांग्रेस के समापन भाषण के दौरान दिमित्रोव कहते हैं :

> "इस समस्या (फासीवाद के खिलाफ संघर्ष में मजदूर वर्ग के सभी हिस्सों की कार्रवाई की एकता कायम करने की समस्या-ला.स.) के सफल समाधान के लिए सबसे पहले यह जरूरी है कि कम्युनिस्ट **मार्क्सवादी-लेनिनवादी विश्लेषण** के अस्त्र का कुशलता के साथ प्रयोग करें, विकसित होती हुई वास्तविक परस्थिति तथा वर्ग शक्तियों की पंक्तिबद्धता का सावधानी से अनुशीलन करें और उसी के अनुरूप अपने कार्यकलाप और संघर्ष की योजना बनाएं। हमारे साथियों में ढली ढलायी योजनाओं, बेजान-फार्मूलों और बने बनाए नमूनों के प्रति जो कमजोरी अक्सर देखने में आती है, उसे हमें निर्ममता के साथ उखाड़ फेंकना चाहिए। हमें उस हालत का खात्मा कर देना चाहिए जिसमें मार्क्सवादी-लेनिनवादी विश्लेषण के जरूरी ज्ञान या योग्यता के अभाव में कम्युनिस्ट लोग परिस्थितियों, वर्ग शक्तियों के संबंधों, सर्वहारा और मेहनतकश अवाम की क्रांतिकारी परिपक्वता तथा संकट से बाहर आने के क्रांतिकारी पथ को संभव बनाने के लिए जरूरी कम्युनिस्ट पार्टी के प्रभाव के स्तर की व्याख्या की लेशमात्र गंभीर कोशिश किये बगैर आम मुहावरों और "संकट से बाहर आने के क्रांतिकारी पथ" जैसे नारों को अपना लेते हैं। ऐसे विश्लेषण के बगैर ये सभी नारे कागजी गोले, थोथे मुहावरे बन जाते हैं जो तात्कालिक कर्तव्यों को महज ओझल करते हैं। ठोस मार्क्सवादी- लेनिनवादी विश्लेषण के बगैर हम फासिज्म की समस्या को, सर्वहारा संयुक्त मोर्चे और जनमोर्चे की समस्याओं को, पूंजीवाद-जनवाद के प्रति अपने रुख की समस्या को, मजदूर वर्ग और खासतौर पर सामाजिक जनवादी मजदूरों के भीतर चल रही प्रक्रियाओं की समस्या को, संयुक्त मोर्चा सरकार की समस्या को या उन अनगिनत नई और पेचीदा समस्याओं में से किसी को भी ठीक-ठीक प्रस्तुत और हल नहीं कर सकेंगे, जिन्हें स्वयं जिंदगी और वर्ग संघर्ष का विकास हमारे सामने पेश कर रहा है और भविष्य में पेश करेगा।" (पृष्ठ-88-89, वही, जोर मूल में)

> "यह अपेक्षा नहीं की जा सकती है कि वे सामाजिक जनवादी मजदूर जो पूंजीपति वर्ग के साथ वर्ग सहयोग की विचारधारा के असर में हैं जिसे उनमें दसियों साल से भरा जाता है, मात्र वस्तुगत कारणों के प्रभाव से खुद-ब-खुद इस विचारधारा से अलग हो जायेंगे। नहीं। उन्हें सुधारवादी विचारधारा की गिरफ्त से स्वयं को मुक्त करने में सहायता देना हमारा, हम कम्युनिस्टों का काम है। कम्युनिज्म के सिद्धान्तों और कार्यक्रम की व्याख्या करने का कार्य धीरज के साथ और दोस्ताना तरीके से किया जाना चाहिए तथा उसे अलग-अलग सामाजिक जनवादी मजदूरों के विकास की मात्रा के अनुसार ढाला जाना

चाहिए। सामाजिक जनवाद की हमारी आलोचना को और अधिक विशिष्ट और व्यवस्थित होना चाहिए तथा उसे स्वयं आम सामाजिक जनवादियों के अनुभव पर आधारित होना चाहिए। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि प्रथमतः वर्ग शत्रु के खिलाफ कम्युनिस्टों के साथ संयुक्त संघर्ष में सामाजिक-जनवादी मजदूरों द्वारा हासिल किये गये अनुभव का इस्तेमाल करके ही उनके क्रांतिकारी विकास को आसान और तेज करना संभव और आवश्यक होगा। सर्वहारा संयुक्त मार्चे में सामाजिक जनवादी मजदूरों की शिरकत से बढ़कर उनके संदेहों और दुविधाओं का दूर करने का कोई दूसरा कारगर तरीका नहीं हैं।" (पृष्ट-98, वही)

"कामरेड स्तालिन ने कहा था :

"कुछ लोग यह सोचते हैं कि यह सर्वथा पर्याप्त है कि एक सही पार्टी लाइन निर्धारित कर ली जाए, उसे घोषित कर सब की जानकारी में ला दिया जाए, उसे सामान्य प्रस्थापनाओं और प्रस्तावों के रूप में प्रस्तुत कर दिया जाए, और उस पर सर्वसम्मत मतदान करा दिया जाए और विजय स्वयं अर्थात अपने आप मिल जायेगी। बेशक यह सरासर गलत है। यह एक बड़ी भ्रांति है। जो लोग इस तरह सोचते हैं वे बहुत बड़ी गलती पर हैं। सिर्फ लाइलाज नौकरशाह ही इस तरह की दलील दे सकते हैं। पार्टी की आम नीति के पक्ष में सुन्दर प्रस्ताव और घोषणाएं तो शुरुआत भर हैं क्योंकि वे विजय की कामना मात्र की सूचक हैं, न कि स्वयं विजय की सूचक। सही नीति की रूपरेखा तैयार कर ली जाये और सही हल निर्दिष्ट कर दिये जाने के बाद सफलता संगठनात्मक कार्य पर, पार्टी लाइन के कार्यान्वयन के लिए संघर्ष के संगठन पर, कार्यकर्ताओं के सही चुनाव पर और अग्रणी निकायों द्वारा फैसलों के कार्यान्वयन के नियंत्रण पर निर्भर करती है। अगर ये बातें नहीं होतीं तो सही पार्टी लाइन और सही फैसलों को गंभीर क्षति पहुंच सकने का भारी खतरा रहता है। यही नहीं, सही नीति निर्धारित कर ली जाने के बाद स्वयं राजनीतिक लाइन-कार्यान्वयन या उसकी असफलता-समेत सब कुछ संगठनात्मक कार्य पर निर्भर करता है।" (पृष्ठ-103, वही)

वर्तमान घोर दक्षिणपंथी एवं नव फासीवादी उभार के प्रति मजदूर वर्ग के दृष्टिकोण का समाहार करें तो यह इस प्रकार होगा।

यह उभार पूंजीवादी संकटों के तीव्र होने के समानांतर तीव्र होता गया है। खासतौर पर 2007-08 के वैश्विक आर्थिक संकट के बाद घोर दक्षिणपंथी एवं नव फासीवादी पार्टियां तेजी से बढ़ी हैं। इस वैश्विक आर्थिक संकट के और भी तीखे होते जाने की संभावना है। इन आर्थिक संकटों के पूंजीवादी व्यवस्था के लिए संकट में तबदील हो जाने की संभावना को पूंजीपति वर्ग समझता है और ऐसी स्थिति में वह ऐसे संकटों के समाधान के एक विकल्प के तौर पर फासीवादी तानाशाही को देखता है। अपने इसी विकल्प के मद्देनजर आज वह घोर दक्षिणपंथी एवं नव फासीवादी पार्टियों को बढ़ावा दे रहा है। पूंजीपति वर्ग का इस दिशा में बढ़ना अपने आप में पूंजीवादी व्यवस्था की असफलता है।

फासीवादी तानाशाही कायम होना मजदूर मेहनतकशों के लिए अत्यन्त कष्टदायक होगा। इसलिए अत्यंत जरूरी है कि जिन देशों में इस तरह का खतरा साफ-साफ दिखाई दे रहा है, उस देश के कम्युनिस्ट फासीवाद की विजय को रोकने के लिए सारे प्रयास करें। इसके लिए वे अपने देश के भीतर वर्ग शक्तियों के आपसी संबंधों का, संकट के प्रभाव में मजदूरों मेहनतकशों के क्रांतिकारीकरण का, कम्युनिस्ट पार्टी के प्रभाव का, फासीवादी आंदोलन का सही विचारधारात्मक जमीन से विश्लषण करें और इस आधार पर मजदूर वर्ग की कार्रवाई की एकता और सही क्रांतिकारी नेतृत्व के तहत व्यापक मेहनतकशों की एकता की योजना बनाएं। इस कार्रवाई की एकता का प्रस्थान बिंदु और मुख्य अंतर्वस्तु मजदूर वर्ग के फौरी आर्थिक और राजनीतिक हितों की रक्षा करना और फासीवाद के खिलाफ मजदूर वर्ग की रक्षा करना होगा। एक सही योजना के निर्धारण के बाद इसको लागू करने के सही संगठनात्मक तौर तरीके विकसित करें। ऐसे देशों में फासीवाद की विजय को रोकने का संघर्ष और कम्युनिस्ट पार्टी के सुदृढ़ीकरण के लिए प्रयास साथ साथ चलते हैं और ये दोनों एक दूसरे को मदद पहुंचाते हैं। इसी तरीके से इन देशों में फासीवाद की विजय को रोका जा सकता है और पूंजीवादी व्यवस्था को समाप्त कर फासीवाद को पैदा करने वाली जमीन को समाप्त किया जा सकता है।

■■■

पश्चिम एशिया : साम्राज्यवादी हस्तक्षेप और युद्धों का अटूट सिलसिला

I

पश्चिम एशिया के राजनीतिक परिदृश्य पर आज नजर डालेंगे तो क्या पायेंगे? हम पायेंगे कि पूरा पश्चिम एशिया सुलग रहा है। सीरिया, इराक और यमन में पिछले कई वर्षों से युद्ध चल रहा है। इस युद्ध में हजारों लोग मारे जा चुके हैं। ये देश तबाही और बर्बादी के खौफनाक मंजर पेश कर रहे हैं। विस्थापित लोगों की संख्या लाखों में है। साम्राज्यवादी देशों के ही नहीं क्षेत्रीय ताकतों के

हवाई जहाज रोज बम बरसा रहे हैं। इन्हीं ताकतों के पाले-पोसे आतंकी समूह एक दूसरे से लड़ रहे हैं। आतंक और अराजकता चरम पर है। और इस बीच 'इस्लामिक स्टेट' के खात्मे की घोषणा की गयी है।

फिलीस्तीन और कुर्द अपने राष्ट्र-राज्य की लड़ाई के लिए रोज कुर्बानी दे रहे हैं। दुनिया भर की सरकारें, संस्थाएं इजरायल और तुर्की की फौजों द्वारा निर्दोष लोगों का कत्ल होते देख रही हैं। फिलीस्तीन और कुर्दों की मुक्ति की लड़ाई हर बीते दिन के साथ जटिल और मुश्किल होती जा रही है।

'अरब बसंत' के फूल मुरझा चुके हैं। मिस्र, लीबिया, ट्यूनेशिया, सीरिया, यमन, बहरीन आदि देशों में वर्ष 2011 में हुए जनविद्रोह अपनी मंजिल या तो आंशिक रूप से पा सके या असफल हो गये। जहां कुछ सफलता भी मिली वहां फिर से बदले रूप में तानाशाहियां कायम हो गयीं। इन जन विद्रोह को साम्राज्यवादी देशों ने कुछ समय भौचक्के रहने के बाद नये हस्तक्षेप के लिए मुफीद समझा। उन्होंने हस्तक्षेप किया। तैयारियां पहले से थीं। साथ देने के लिए कई क्षेत्रीय ताकतें थीं। नतीजा कुल मिलाकर यह निकला कि सीरिया, लीबिया, यमन तबाही बर्बादी के नमूने बनते हुए गहरे संकट में फंस गये। युद्धों के जाल में फंस गये। मिस्र, ट्यूनेशिया, बहरीन आदि अरब देशों की जनता वह कुछ न पा सकी जिसके लिए उसने विद्रोह शुरू किया था। हां भावी संघर्षों के लिए रिहर्सल तो हो ही गयी।

सीरिया, यमन, कतर और फिलीस्तीन को लेकर विस्तारवादी मंसूबे पालने वाली क्षेत्रीय ताकतें आमने-सामने हैं। साऊदी अरब, तुर्की, ईरान व इजरायल ऐसी क्षेत्रीय ताकतें है जो अपने हितों व मंसूबों के लिए सीधे सैन्य हस्तक्षेप कर रही हैं। ये कई सशस्त्र आतंकवादी समूहों को भी अपने मंसूबे बढ़ाने के लिए इस्तेमाल कर रही हैं। सीरिया में तुर्की, ईरान व इजरायल का सीधा हस्तक्षेप है। यमन में साऊदी अरब और ईरान आमने-सामने हैं। कतर को लेकर साऊदी अरब, तुर्की व ईरान के बीच संघर्ष है। हालांकि कतर पश्चिमी एशिया में एक बड़ी ताकत के रूप में उभर चुका है। विभिन्न इस्लामिक कट्टरपंथियों को प्रश्रय देने के नाम पर साऊदी अरब, बहरीन, मिस्र, व संयुक्त अरब अमीरात आदि ने उस पर जून 2017 से आर्थिक प्रतिबंध लगाये हुए हैं तथा नाकेबंदी भी की हुई है। कतर के साथ ईरान व तुर्की खड़े हैं। यह संकट उलझता जा रहा है।

इस सब के ऊपर प.एशिया बड़े साम्राज्यवादी देशों के षड्यंत्र व सैन्य हस्तक्षेप से लहूलुहान है। साम्राज्यवादी देश अपने घृणित मंसूबों को पूरा करने के लिए किसी भी हद तक जाते रहे हैं। खासकर दुनिया की सबसे बड़ी आर्थिक-सैन्य ताकत रखने वाला सं.रा. अमेरिका दूसरे विश्वयुद्ध के बाद से ही पश्चिम एशिया के हर युद्ध, हर तनाव, हर उथल-पुथल में अहम किरदार निभा रहा है। सं.रा. अमेरिका के अलावा यूनाइटेड किंग्डम, फ्रांस व रूस दूसरी महत्वपूर्ण साम्राज्यवादी ताकतें हैं जो प. एशिया को अपने घृणित हितों व मंसूबों को साधने के लिए जंग का मैदान बना देते हैं। इन्होंने जगह-जगह सैन्य अड्डे बनाये हुए हैं। जंगी जहाज भूमध्य सागर, लाल सागर, फारस की खाड़ी आदि सभी जगह तैनात हैं। सोवियत संघ के विघटन के बाद डेढ़ -दो दशक प.एशिया के पटल से लगभग गायब रूसी साम्राज्यवादी फिर से ताल ठोंकने लगे हैं। जर्मनी, जापान, इटली आदि के भी यहां अपने हित हैं पर वे सीधे सैन्य तौर पर यहां उपस्थित नहीं हैं।

चीन, भारत, दक्षिण कोरिया जैसे देश जहां अपने तेल व गैस की जरूरतों के लिए प.एशिया के तेल-गैस उत्पादक देशों पर निर्भर हैं वहीं ये उनकी कई किस्म के माल की खपत के बड़े बाजार भी बनते हैं। प.एशिया के देश इनके बड़े व्यापारिक साझेदारों में शामिल हैं। इनकी यहां साम्राज्यवादी देशों की तरह कोई भूमिका सीधे तौर पर नहीं बनती है पर यहां की उथल-पुथल इन देशों में तुरंत और सीधा असर डालती है। चीन, भारत, जापान ने प.एशिया में तो नहीं पर प.एशिया से सटे अफ्रीका के देशों में सैन्य अड्डे बनाये हैं। खासकर जिबूति ऐसा देश है जहां हाल के समय में चीन, जापान ने सैन्य अड्डा बनाया है। भारत (पड़ोसी देश भूटान की बात छोड़ दी जाय) ने भी हाल के वर्षों में मेडागास्कर, मॉरीशस, सेशेल्स में अपनी सैन्य गतिविधियों के केन्द्र बनाये हैं। सेशेल्स में जरवरी 2018 से एक सैन्य अड्डे की शुरुआत हुयी है। जिसे लेकर कुछ विवाद भी है।

यह लेख मूलतः प.एशिया के आज के हालात पर केन्द्रित है। यह समकालीन इतिहास की चर्चा प.एशिया के संदर्भ में करते हुए उन कारकों पर चर्चा करता है जिसके कारण प.एशिया में साम्राज्यवादियों का हस्तक्षेप बना हुआ है और लगातार छोटे-बड़े युद्ध होते रहते हैं।

लेख में, उत्तरी अफ्रीकी देशों की चर्चा तभी की गयी है जहां प.एशिया की राजनीतिक स्थिति को स्पष्ट करने के लिए आवश्यकता पड़ी है। वैसे उत्तरी अफ्रीका के देश अरब जगत का हिस्सा बनते हैं। अरब जगत में प.एशिया और उत्तरी अफ्रीका के देश शामिल हैं। पश्चिमी विश्लेषक अक्सर ही इन्हें 'मीना' (एम ई एन ए-मध्य पूर्व व उत्तरी अफ्रीका) कह कर सम्बोधित करते हैं। मीना की तर्ज पर हमारे यहां 'वाना' (डब्ल्यू ए एन ए-पश्चिम एशिया व उत्तरी अफ्रीका) कहने का प्रचलन शासक वर्गीय हलकों में बढ़ा है। लेख को प. एशिया पर केन्द्रित करने के लिए अरब जगत के अफ्रीका के हिस्सों को छोड़ दिया गया है। वैसे 'लाल सलाम' के अंकों में अरब जगत व अफ्रीका पर पहले सामग्रियां छप चुकी हैं। ऐसे ही प. एशिया के हिस्सा रहे पूर्व सोवियत संघ देशों व साइप्रस को छोड़ दिया गया है।

इस लेख में तुर्की को प. एशिया में मानकर चर्चा की गयी है। यद्यपि तुर्की यूरेशिया का हिस्सा बनता है और वह यूरोपीय यूनियन में शामिल होना चाहता है। इसका एक हिस्सा यूरोप में तथा बड़ा हिस्सा एशिया में पड़ता है। प. एशिया की राजनीति में तुर्की सदा से एक बड़ी नकारात्मक भूमिका निभाता रहा। आज के प. एशिया के अधिकांश देश पहले विश्वयुद्ध के पहले आतोमन साम्राज्य

के हिस्से ही थे। हाल के दशक में तुर्की की प. एशिया में सक्रियता व हस्तक्षेप काफी बढ़ गया है। सीरिया व कतर के मामले में वह अपने हितों के लिए मुखरता से सक्रिय है।

उपरोक्त बातों पर चर्चा करने से पहले प. एशिया के बारे में कुछ सामान्य बातों को कर लेना जरूरी है।

II
सामान्य

पश्चिम एशिया के अधिकांश देश अरब जगत का हिस्सा बनते हैं। ईरान, इजरायल, तुर्की ही ऐसे देश हैं जो किसी भी तरह से अरब जगत का हिस्सा नहीं हैं। न भाषा, न संस्कृति, न इतिहास और न मनोवैज्ञानिक संरचना में। तुर्की और ईरान को छोड़ दिया जाय तो इजरायल ही ऐसा देश है जहां ठीक संख्या में अरब आबादी रहती है। वह भी इसलिए कि इजरायल को अरब जमीन में ही बसाया गया था। कुर्द भी अरब जगत का हिस्सा नहीं हैं। वे अपने अलग राष्ट्र की मांग को लेकर तुर्की, सीरिया, इराक व ईरान में संघर्ष कर रहे हैं।

पश्चिम एशिया में अरब-गैर अरब के अलवा एक बड़ा बंटवारा धार्मिक खास कर शिया-सुन्नी सम्प्रदाय के आधार पर किया जाता है। और जब भी पश्चिम एशिया के समाज में मौजूद तनावों की बात की जाती है तो इस बंटवारे को बढ़ा-चढ़ा
कर पेश किया जाता है। साम्राज्यवाद से लेकर स्थानीय शासकों के लिए अपने प्रतिक्रियावादी तंत्र की हिफाजत और आम मेहनतकशों की वर्गीय लामबंदी के

तालिका -2

स्रोत-वही

तालिका -3

स्रोत-वही

आबादी की दृष्टि से सबसे बड़े देश क्रमशः तुर्की, ईरान, इराक, सा.अरब, यमन, सीरिया व इजरायल हैं। कतर, कुवैत, बहरीन, सं.अरब अमीरात व ओमान आबादी की दृष्टि से छोटे देश हैं और उस पर इनकी आबादी का बड़ा हिस्सा प्रवासी मजदूरों व अन्य लोगों का है। कुछ ऐसा ही साऊदी अरब में भी है। (तालिका -2 देखें)

पश्चिम एशिया के सभी देशों का शहरीकरण बहुत तेजी से हुआ। यमन को छोड़ दिया जाय तो पश्चिम एशिया के सभी देशों में शहरी आबादी का बाहुल्य है। फारस की खाड़ी में स्थित सभी देशों की शहरी आबादी अस्सी फीसदी से ज्यादा है। कतर, कुवैत, बहरीन, सं.अ.अमीरात की ग्रामीण आबादी तो नाममात्र की है। इजरायल की भी शहरी आबादी नब्बे फीसदी से भी ज्यादा है।

पश्चिम एशिया में सबसे बड़े देशों तुर्की, ईरान की भी चौथाई आबादी शहरों में रहती है।

शहरीकरण, साक्षरता, विद्युतीकरण जैसे मामलों में सबसे पिछड़ा यमन ही है। अन्यथा पूरे पश्चिम एशिया में साक्षरता और विद्युतीकरण यूरोप के देशों की तरह ही है। शासन का तंत्र जैसा भी हो ये देश पूंजीवादी देश हैं। अर्थव्यवस्था में कृषि का हिस्सा यमन व सीरिया को छोड़कर दस फीसदी से भी कम है। खाड़ी देशों में तो

तालिका-4

कृषि नाम मात्र की भी नहीं है। ये अपनी खाद्य जरूरतों के लिए पूर्णतः निर्भर हैं और इसीलिए खाद्यान्नों की कीमतों में बढ़ोत्तरी या संकट पैदा होने पर यहां गहरा प्रभाव पड़ता है। कतर में लगाये गये प्रतिबंधों व नाकेबंदी में यह बात उजागर हुयी। पश्चिम एशिया के सभी देशों में सेवा क्षेत्र अर्थव्यवस्था का सबसे बड़ा हिस्सा है। (तालिका -2 में देखें)

पश्चिम एशिया में तुर्की, इजरायल, ईरान ही ऐसे देश हैं जहां उद्योगों का विकास हुआ है। बाकी सभी देशों (यमन व लेबनान को छोड़कर) में समृद्ध तेल व गैस भण्डारों के दोहन से संबंधित उद्योगों के अलावा औद्योगीकरण कुछ खास नहीं है। सेवा क्षेत्र का बड़ा हिस्सा दिखाता है कि (खासकर खाड़ी के देशों में) रियल स्टेट, होटल, बैंक, पर्यटन से संबंधित कारोबार अधिक हैं

तालिका-5

पश्चिम एशिया में तेल व गैस के विशाल भण्डारों की खोज पिछली सदी के दूसरे-तीसरे दशक में शुरू हुयी थी। और तब से लेकर आज तक पश्चिम एशिया में साम्राज्यवादी कब्जे, हस्तक्षेप, स्थानीय देशों के बीच युद्ध और तनाव के केन्द्र में तेल व गैस के भण्डार हैं। तालिका 4 विभिन्न देशों में प्रतिदिन होने वाले तेल व गैस उत्पादन, तालिका 5 निर्यात को दिखलाती है। तालिका-3 पश्चिम एशिया के देशों के आयात-निर्यात व उन प्रमुख देशों के बारे में भी बताती है जहां से आयात-निर्यात होता है। तालिका से स्पष्ट है। कि

चीन पश्चिम एशिया का सबसे बड़ा आयातक व निर्यातक देश है। पश्चिम के साम्राज्यवादियों के अलावा पश्चिम एशिया के देशों का कारोबार भारत व दक्षिण कोरिया से भी ठीक ठाक मात्रा में है।

तालिका-6

पश्चिम एशिया के देशों में राजनीतिक व्यवस्था में मजदूरों व अन्य मेहनतकशों की भूमिका अधिकांश देशों में न के बराबर है। वर्ष 2011 में अरब देशों में हुए जनविद्रोह में वर्षों से कायम शासकों के खिलाफ आक्रोश फूट पड़ा था। ट्यूनेशिया, मिस्र, बहरीन, जॉर्डन आदि देशों की एकतंत्रीय शासन प्रणाली निशाने पर आयी थी। कुछ सुधारों के साथ बहरीन, कुवैत, संयुक्त अरब अमीरात और जॉर्डन में अभी शेख या राजा के हाथों में सत्ता है यद्यपि कुछ शक्तियों का बंटवारा करते हुए संवैधानिक राजतंत्र कायम किया गया। ओमान, कतर, साऊदी अरब की शेखशाही जस की तस बनी रही। महिलाओं को काफी जद्दोजहद के बाद ड्राईविंग करने के जैसे अधिकारों की घोषणाएं बताती हैं कि साऊदी अरब आदि के शेख किस तरह से इक्कीसवीं सदी में अपने देश के नागरिकों को बेहद सामान्य जनवादी अधिकार देने को भी आसानी से तैयार नहीं हैं।

तुर्की, ईरान, इजरायल व लेबनान में संसदीय लोकतंत्र है। तुर्की में हाल के दशक में समाज और राजनीति में इस्लामीकरण पर शासकों का जोर है। एर्दोगन ने तुर्की में सत्ता अपने हाथ में केन्द्रित कर ली है। ईरान में 1979 की 'इस्लामिक क्रांति' के बाद ईरान को 'इस्लामिक गणराज्य' घोषित कर दिया गया। यहां तब से सत्ता वास्तव में धार्मिक कट्टरपंथियों के हाथों में है। सत्ता के सर्वेसर्वा शिया धर्मगुरु बने हुए हैं। लेबनान में संसदीय लोकतंत्र के बावजूद सत्ता के प्राधिकार का संकट बना हुआ है।

तालिका-7

स्रोत-वही

इराक में संसदीय लोकतंत्र सद्दाम हुसैन को फांसी पर लटकाये जाने के बाद कायम किया गया पर यह वैधता हासिल करने में कामयाब नहीं हो पा रहा है। सीरिया यमन, वर्ष 2011 के बाद से साम्राज्यवादी व पड़ोसी ताकतवर देशों के हस्तक्षेप के बीच युद्ध के दौर से गुजर रहे हैं। यहां सवाल ही यह है कि सत्ता किसके पास रहेगी।

कुल मिलाकर देखें तो पश्चिम एशिया के देशों में पूंजीवादी उत्पादन संबंध कायम हो चुके हैं। पूर्व पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्ध समाप्तप्रायः हैं। यमन ही सबसे पिछड़ा देश है परन्तु वह भी एक पूंजीवादी देश है। तुर्की, इजरायल विकसित देशों के संगठन ओ ई सी डी के सदस्य हैं। तुर्की पहले विश्वयुद्ध के पूर्व तक एक बहुत बड़े साम्राज्य का मालिक था। वह पुनः एक साम्राज्यवादी शक्ति बनने के मंसूबे पाले हुए है। इजरायल ने अपने सैनिक व आर्थिक ताकत के दम पर दबदबा बनाया हुआ है। फिलीस्तीन के बहुत बड़े भाग को पहले ही वह हड़प चुका है। सीरिया के भी एक हिस्से पर उसका कब्जा है।

तालिका-8

सैन्य खर्च

तेल व गैस सम्पदा से सम्पन्न देशों में किरायाजीवी पूंजीपति वर्ग है। यह पूर्णतः परजीवी है। स्थानीय आबादी यदि बेरोजगारी की शिकार है तो अप्रवासी मजदूर अतिशय परिश्रम और शोषण के शिकार हैं।

पश्चिम एशिया के देशों की अर्थव्यवस्था को हाल के वर्षों में तेल व गैस की कीमतों में आयी गिरावट और चल रहे युद्धों व तनाव ने प्रभावित किया है। तालिका-6 में हाल के वर्षों में सकल घरेलू उत्पाद की वास्तविक दर को दिखलाती है। यह तालिका पश्चिम एशिया से लगे इलाकों की भी सकल घरेलू उत्पाद की दर का दिखलाती है। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष इस इलाके को एम ई एन ए पी (Middle East North Africa Pakistan) कहकर सम्बोधित करता है।

तालिका से स्पष्ट है कि पश्चिम एशिया के सभी देशों की अर्थव्यवस्था संकट से गुजर रही है। जी सी टी (गल्फ कॉरपोरेशन काउंसिल) की अर्थव्यवस्था 2000-14 के बीच में 4.9 फीसदी की औसत दर से बढ़ रही थी परन्तु उसके बाद से लगातार गिरावट है और 2017 में तो वह ऋणात्मक तक हो गयी। आगे के वर्षों के लिए धीमी विकास दर का अनुमान है। इसी तरह अगर समग्र अरब दुनिया को लिया जाए तो वह भी 2014 के बाद लगातार गिर रही है। ऐसे ही अगर ईरान की अर्थव्यवस्था की हालत को देखा जाये तो वह काफी उतार-चढ़ाव के दौर से गुजर रही है। इस तालिका में तुर्की के आंकड़े नहीं हैं। तुर्की की अर्थव्यवस्था हाल के वर्षों में ठीक नहीं है। उसकी औसत विकास दर 5 फीसदी के आस-पास रही है।

तालिका-7 सकल घरेलू उत्पाद के आकलन तेल के सकल घरेलू उत्पाद व गैर-तेल सकल घरेलू उत्पाद के आधार पर करती है। इस तरह से जब फारस की खाड़ी के देशों की गैर-तेल सकल घरेलू उत्पाद को देखा जाता है तो अर्थव्यवस्था की बुरी हालत दिखायी देती है। यह आंकड़ा इसलिए महत्वपूर्ण हो जाता है कि क्योंकि यह कृषि, उद्योग, सेवाक्षेत्र की स्थिति को दिखला रहा होता है। एक तथ्य यह है कि जून 2014 से जनवरी 2015 के बीच तेल की कीमतों में 60 फीसदी की गिरावट हुयी है। और इस गिरावट ने अपना असर दिखाया है। तेल सकल घरेलू उत्पाद की औसत दर खाड़ी के देशों में निम्न बनी हुयी है। 2017 में तो यह (2.8) और 2018 में इसका अनुमान महज 10.61 का है।

पश्चिम एशिया के देशों की अर्थव्यवस्था के आर्थिक संकट के वर्तमान दौर में बाहर निकलने के कोई आसार भी नहीं हैं।

पश्चिम एशिया में चल रहे साम्राज्यवादी हस्तक्षेप व क्षेत्रीय तनावों के कारण यह पूरा क्षेत्र एक बड़ा युद्ध का मैदान बना हुआ है। संयुक्त राज्य अमेरिका, यूनाइटेड किंग्डम, फ्रांस, रूस आदि सभी बड़ी साम्राज्यवादी ताकतों ने जगह-जगह सैन्य अड्डे बनाये हुए हैं। भूमध्य सागर, लाल सागर, फारस की खाड़ी और हिंद महासागर में परमाणु हथियारों से लैस जंगी जहाज और पनडुब्बियां तैनात हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका के पूरी दुनिया के 150 देशों में 1000 से ज्यादा सैन्य अड्डे हैं।

कुवैत, संयुक्त अरब अमीरात, ओमान, बहरीन, साऊदी अरब, कतर, जार्डन, इराक सहित 14 पश्चिम एशियाई व उत्तरी अफ्रीकी देशों में अमेरिकी सेनाएं तैनात हैं। कतर में अमेरिका का सबसे बड़ा सैन्य अड्डा है जहां करीब 10000 सैनिक तैनात हैं। कुवैत में अमेरिकी सैनिकों की संख्या पश्चिम एशिया में सबसे ज्यादा है। कुवैत में वर्ष 2017 में 15000 सैनिक तैनात थे।

बहरीन, कतर व साइप्रस में यूनाइटेड किंग्डम ने सैन्य अड्डे बनाये हुए हैं। फ्रांस ने लेबनान व संयुक्त अरब अमीरात में, इटली ने संयुक्त अरब अमीरात व रूस ने सीरिया में सैन्य अड्डे बनाये हुए हैं। तुर्की ने कतर में एक बड़ा सैन्य अड्डा हाल के वर्षों में बनाया है। तुर्की ने इसके अलावा सीरिया व इराक में मौजूदा स्थिति का लाभ उठाते हुए सैन्य अड्डे कायम किये हुए हैं।

पश्चिम एशिया का पूरा भू-भाग सैन्यीकृत है। हथियारों की खरीद में यहां के देश दुनिया में अव्वल हैं। मिस्र, साऊदी अरब और तुर्की लम्बे समय से संयुक्त राज्य अमेरिका से बड़ी सैन्य सहायता पाते रहे हैं। तुर्की अमेरिकी साम्राज्यवाद द्वारा कायम सैन्य संगठन नाटो का भी सदस्य है। वर्ष 2017 में संयुक्त राज्य अमेरिका व चीन के बाद सबसे ज्यादा सैन्य व्यय साऊदी अरब का था।

वर्ष 2010 से पहले तक कतर का सैन्य व्यय सकल घरेलू उत्पाद का महज दो फीसदी था परन्तु जब से साऊदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात सहित कुछ अन्य अरब देशों ने प्रतिबंध लगाये हैं तब से कतर ने हथियारों की खरीद पर बहुत अधिक धन खर्च किया है।

पश्चिम एशिया के देशों के सैन्य खर्च को तालिका-8 में दिखाया गया है। इस तालिका में सीरिया के आंकड़े नहीं हैं। कतर के आंकड़े वर्ष 2010 के हैं।

III

पश्चिम एशिया की बदलती सूरत

पश्चिम एशिया का बीसवीं सदी का इतिहास उथल-पुथल से भरा रहा है। और कदाचित यह उथल-पुथल इक्कीसवीं सदी में भी जारी है।

बीसवीं सदी के पहले दशक में पश्चिम एशिया का जो भू-राजनैतिक परिदृश्य था वह दूसरे-तीसरे दशक में नहीं था। और तीसरे दशक का भू-राजनैतिक मानचित्र पांचवे-छठे दशक में पूरी तरह बदल चुका था। इसके बाद एक सापेक्षिक स्थिरता के बावजूद देशों की सीमाएं बदलती रहीं। साम्राज्यवादी हस्तक्षेप और युद्धों ने इसमें अहम भूमिका निभायी। और इस सदी के दोनों दशकों को देखें तो यह प्रक्रिया जारी है।

पश्चिम एशिया के हालिया इतिहास को हम तीन चरणों मे बांट कर समझ सकते हैं। ये तीनों चरण अपनी अलग-अलग विशेषताएं लिए हुए हैं। कुछ प्रमुख घटनाएं इन तीन चरणों को आपस में बांटती हैं।

पहला चरण : पहले विश्व युद्ध में आतोमान साम्राज्य के पतन से लेकर दूसरे विश्वयुद्ध की शुरुआत तक माना जा सकता है।

दूसरा चरण : दूसरे विश्व युद्ध से लेकर सोवियत संघ के पतन तक माना जा सकता है।

तीसरा चरण : इराक पर पश्चिमी साम्राज्यवाद द्वारा बोले गये हमले से लेकर अब तक माना जा सकता है।

पहला चरण : ईरान को छोड़कर समूचा पश्चिम एशिया पहले विश्वयुद्ध के पूर्व तक आतोमान साम्राज्य का हिस्सा था। इस साम्राज्य का विस्तार उन्नीसवीं सदी में दक्षिण-पूर्व यूरोप से लेकर उ. अफ्रीका तक था। अरब के देश इस आतोमान साम्राज्य का हिस्सा थे।

पहले विश्वयुद्ध ने जिन साम्राज्यों का अंत किया उनमें आतोमान साम्राज्य प्रमुख था। पहले विश्वयुद्ध में जर्मन साम्राज्य, आस्ट्रो-हंगेरियन साम्राज्य, जारशाही के साथ आतोमान साम्राज्य का अंत हो गया। इस साम्राज्य की रक्षा में अरब देशों की कोई रुचि नहीं थी। तुर्क शासक अरबों को अपने से नीचा समझते थे। अरब के अभिजातों से उनके सम्बन्ध एकतरफा थे। तुर्कों द्वारा अरबों से वैवाहिक संबंध नहीं कायम किये जाते थे।

नक्शा-1 : if'pe ,f'k;k

अरब राष्ट्रवाद की नींव आतोमान साम्राज्य के पतन से पहले ही पड़ने लगी थी। पहले विश्व युद्ध में आतोमान साम्राज्य बिखर गया।

यह वह समय था जब तुर्की का समाज उथल-पुथल के दौर से गुजर रहा था। पहले विश्वयुद्ध के कुछ वर्ष पहले 1908 में 'युवा तुर्क' आंदोलन पैदा हुआ। इस आंदोलन के मुख्यतया कर्ता-धर्ता विद्यार्थी, फौजी अफसर और सरकारी कर्मचारी आदि निम्न पूंजीपति वर्ग के सदस्य थे। ये आतोमान साम्राज्य के खिलाफ थे और आधुनिक संवैधानिक व्यवस्था चाहते थे जिसमें बहुपार्टी व्यवस्था हो। इन्होंने अपने ध्येय के लिए 'कमेटी ऑफ यूनियन एण्ड प्रोग्रेस' बनायी हुयी थी। 'युवा तुर्क' आंदोलन ने उतार-चढ़ाव के बीच अपनी मंजिल मुस्तफा कमाल अतातुर्क के सत्तारूढ़ होने के साथ पायी। 1923 में कमाल अता तुर्क एक विद्रोह के जरिये सत्ता पर काबिज हुए थे। पहले वे एक फौजी अफसर थे। उन्होंने तुर्की का आधुनिकीकरण किया। सार्विक मताधिकार (1930), धर्मनिरपेक्ष सत्ता व सेना सहित कई ऐसे काम किये जिससे तुर्की आधुनिक पूंजीवादी समाज की ओर बढ़ चला।

अरब राष्ट्रवाद में 'युवा तुर्क' आंदोलन का भी असर था। आतोमान साम्राज्य का इतिहास सभी प्रतिक्रियावादी साम्राज्यों की तरह क्रूरता और जनसंहार से भरा हुआ था। अपने साम्राज्य को बनाये रखने के लिए आतोमान साम्राज्य ने कई वीभत्स काण्ड रचे थे जिसमें सबसे लोमहर्षक 15 लाख अरमेनियन लोगों का नरसंहार था। अरब भी आतोमान साम्राज्य की क्रूरता का भुक्तभोगी था। अरब के लोग आतोमान साम्राज्य से मुक्ति चाहते थे। पहले विश्वयुद्ध में अरब राष्ट्रवादी आतोमान साम्राज्य के साथ नहीं थे। वे आतोमान साम्राज्य के विरोधी ब्रिटिश, फ्रांसीसी व इटली के साम्राज्यवादियों के खिलाफ लड़ाई में नहीं उतरे। अरब की मुक्ति की आकांक्षा को ब्रिटिश व फ्रांसीसी साम्राज्यवादियों ने पहले हवा दी और बाद में धोखा दे दिया।

पहले विश्व युद्ध में आतोमान सहित अन्य साम्राज्यों के नष्ट होने का व्यापक प्रभाव यूरोप सहित पश्चिम एशिया में पड़ा। इन साम्राज्यों के पतन का विश्व इतिहास में अपना महत्व है। परन्तु विश्व इतिहास की गति को जिस घटना ने पूरी तरह बदल दिया था वह 'महान अक्टूबर समाजवादी क्रांति' थी। यह क्रांति ठीक विश्वयुद्ध के बीच में घटी थी। इस क्रांति ने मजदूरों, किसानों, नौजवानों सहित उत्पीड़ित राष्ट्रीयताओं की मुक्ति की आकांक्षा को पंख लगा दिये। अरब राष्ट्रवाद को इस क्रांति से नयी ऊर्जा व गति मिली। बोल्शेविक क्रांति ने साम्राज्यवाद को जबरदस्त चुनौती दी। साथ ही उन षड्यंत्रों का पर्दाफाश कर दिया जो साम्राज्यवादियों ने रचे थे। बोल्शेविकों के द्वारा गुप्त संधियों के प्रकाशन ने साम्राज्यवादियों की पोल खोल दी थी।

अभी विश्व युद्ध चल ही रहा था कि ब्रिटिश और फ्रांसीसी साम्राज्यवादियों ने एक गुप्त समझौते के तहत 1916 में आतोमान साम्राज्य के पश्चिम एशिया और उत्तरी अफ्रीका के अरब देशों को आपस में बांट लिया। इस समझौते को 'सीकेस-पिकोट एग्रीमेंट' (sykes-picot-Agrement) के नाम से जाना जाता है। यह समझौता 1917 में 'महान अक्टूबर समाजवादी क्रांति' के बाद दुनिया के सामने तब आया जब वह बोल्शेविकों के अखबार 'प्राव्दा' आदि में छप गया। साम्राज्यवादी बेनकाब हो चुके थे पर उन्होंने अपने कुत्सित इरादे नहीं त्यागे। उन्होंने अरब के लोगों की आजादी की मांग को धता बताते हुए अरब को आपस में बांट लिया। यह धोखा वैसा ही था जैसा भारतीयों को दिया गया था। ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने भारतीयों की तरह अरबों को यह आश्वासन दिया था कि पहले विश्वयुद्ध में उनका साथ देने पर वे 'होमरूल' का अधिकार देंगे।

इस गुप्त समझौते के तहत ब्रिटेन को भूमध्य सागर और जार्डन नदी के बीच का क्षेत्र, जॉर्डन, दक्षिणी इराक मिला तो फ्रांस को दक्षिणी तुर्की, उत्तरी इराक, सीरिया और लेबनान मिले। मिस्र व ईरान पहले से ही ब्रिटिश प्रभाव में थे।

उन्नीसवीं सदी के सातवें दशक में स्वेज नहर के बन जाने से भूमध्य सागर और लालसागर आपस में जुड़ गये। इस तरह यूरोप और भारत, चीन आदि का सामुद्रिक मार्ग छोटा और सुगम हो गया। इससे पश्चिम एशिया के इस भू-भाग का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया। मिस्र 1882 से ही ब्रिटिश उपनिवेशवादियों के कब्जे में आ चुका था। स्वेज नहर का संचालन मुख्यतः उनके हाथ में था।

बीसवीं सदी के दूसरे दशक के बाद पश्चिम एशिया में एक-एक करके कई स्थानों पर तेल व गैस के प्राकृतिक भंडार खोजे जाने लगे थे। यह ठीक वह समय था जब ऑटोमोबाइल क्षेत्र तेजी से विकसित हो रहा था और तेल की मांग हर बीते दिन के साथ बढ़ती जा रही थी। और यही वजह थी कि पहले विश्वयुद्ध के ठीक बीच में पश्चिम एशिया का बंटवारा कर लिया गया। यह बंटवारा औपनिवेशिक ताकतों के द्वारा मनमाने ढंग से किया गया था। मेज पर नक्शा रखकर आपस में हैसियत के अनुरूप बांट लिया गया था। इस बंटवारे में न तो भौगोलिक और न ही स्थानीय समाजों की विशेषताओं का ख्याल रखा गया था। इस इलाके की परम्परागत अर्थव्यवस्था को नष्ट कर दिया गया। जिससे कई जगह अकाल की स्थिति पैदा हो गयी। बंटवारे वाले इलाकों में अमीरों व कबीलाई नेताओं को खरीदकर नयी तानाशाहियां कायम कर दी गईं। कहने को कई आजाद नये राष्ट्र थे।

आतोमान साम्राज्य के दौरान जिस तरह से पश्चिम एशिया की क्रूरतापूर्वक लूट की गयी थी वह काम अब थोड़ा भिन्न ढंग से ब्रिटिश व फ्रांसीसी साम्राज्यवादी करने लगे। अपने कब्जे को कायम रखने के लिए उन्होंने 'फूट डालो और राज करो' की नीति अपनायी। इसके तहत उन्होंने अपने द्वारा कायम किये गये राज्यों में धार्मिक, कबीलाई, नस्लीय वैमनस्य को जन्म दिया। नये राज्य एक दूसरे के खिलाफ भी थे। असल में पश्चिम एशिया व उत्तरी अफ्रीका का जो आर्थिक, राजनीतिक व सामरिक महत्व दूसरे विश्व युद्ध के पहले और बाद में बनता गया उसके कारण साम्राज्यवादी यहां अपनी गिरफ्त किसी भी तरह से बना के रखना चाहते थे।

दूसरा चरणः ईरान को छोड़कर पश्चिम एशिया के देशों के संसाधनों का इस्तेमाल ब्रिटिश व फ्रांसीसी साम्राज्यवादियों ने दूसरे विश्वयुद्ध के समय भरपूर ढंग से किया। ईरान एक समय तक तटस्थ रहा परन्तु 1941 में जर्मनी के बढ़ते कदमों के बीच ब्रिटिश व सोवियत सेनाओं ने ईरान को अपने संरक्षण में ले लिया। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद सोवियत संघ के पक्ष में ईरान खड़ा न हो जाये इसलिए ब्रिटिश व अमेरिकी साम्राज्यवादियों ने एक के बाद एक कई षड्यंत्र रचे। 1953 में मोहम्मद मोसद्दक की सरकार को इसलिए गिरा दिया गया क्योंकि वे तेल उद्योग का राष्ट्रीयकरण कर रहे थे। 1979 में 'इस्लामिक क्रांति' तक अमेरीकी साम्राज्यवाद का पिट्ठू शाह रजा पहलवी का शासन चलता रहा। इस क्रांति के बाद ईरान को इराक के साथ लम्बे युद्ध में उलझना पड़ा।

तुर्की के बारे में जैसे हम चर्चा कर आये हैं कि वहां 1923 में गणतंत्र की स्थापना हो गयी थी। कमाल अता तुर्क ने तुर्की को एक आधुनिक धर्मनिरपेक्ष पूंजीवादी लोकतंत्र की ओर बढ़ा दिया था। दूसरे विश्वयुद्ध में तुर्की तटस्थ ही बना रहा।

तुर्की और ईरान के अलावा पश्चिम एशिया के देशों में जहां फारस की खाड़ी के देशों व जॉर्डन में कायम की शेखशाहियां कमोबेश कुछ छुटपुट परिवर्तन के साथ जस की तस बनी रहीं वहीं शेष देश इराक, सीरिया, लेबनान, यमन और इजरायल में एकदलीय शासन से लेकर बहुदलीय शासन की पूंजीवादी राजनीतिक प्रणालियां अस्तित्व में आयी। अपने अस्तित्व से लेकर अब तक इजरायल में बहुदलीय पूंजीवादी लोकतंत्र कायम रहा।

खाड़ी के देशों व जॉर्डन में कायम शेखशाहियां ऐसी विरल राजनीतिक श्रेणी बनती है जहां आम जनता को नाममात्र का भी जनवाद हासिल नहीं है। कहने को तो कुवैत, जो कि 1961 में ब्रिटेन से आजाद हुआ, में 1963 से ही चुनी हुई संसद है। ये औपचारिक तौर पर स्वतंत्र व संप्रभु देश हैं परन्तु इन देशों में साम्राज्यवादी देशों ने सैन्य अड्डे कायम किये हुए हैं। तेल व गैस की सम्पदा के दम पर कालान्तर में ये देश ऐसे निवेशक बन गये हैं जो साम्राज्यवादी देशों तक में भारी पूंजी निवेश किये हुए हैं। कतर, बहरीन इसके प्रमुख उदाहरण हैं। यहां की शेखशाहियों को साम्राज्यवाद पालता-पोषता है और तेल-गैस की सम्पदा से होने वाली आय का एक छोटा

हिस्सा मूल स्थानीय आबादी को दिया जाता है। जो इस कारण एक हद तक शेखशाहियों और साम्राज्यवाद का सामाजिक आधार बन जाती हैं।

इराक व सीरिया पश्चिम एशिया के ऐसे देश रहे हैं जहां पर मिस्र की तरह अरब राष्ट्रवाद सबसे अधिक प्रभावी रहा है। अरब राष्ट्रवाद में निम्न पूंजीपति वर्ग के सदस्यों की भूमिका प्रभावी रही है। फौजी अफसरों ने अरब राष्ट्रवाद की लहर पर सवार होकर साम्राज्यवाद के समर्थक पिट्ठू शासकों को खदेड़ कर सत्ताएं हासिल कीं। राष्ट्रीयकरण, भूमि सुधार, निजी क्षेत्र के स्थान पर सार्वजनिक क्षेत्र को बढ़ावा देने जैसे कदम उठाते हुए तथा विश्व परिस्थिति का लाभ उठाते हुए इन्होंने पचास-साठ के दशक में एकदलीय शासन प्रणाली कायम करते हुए ऐसे तंत्र को विकसित किया जो अपने आप में सैन्य तानाशाहियां ही थीं।

लेबनान व यमन का इतिहास इस पूरे काल में स्थानीय क्षेत्रीय शक्तियों के साथ साम्राज्यवादी ताकतों के हस्तक्षेप से गृह युद्ध का रहा है। लेबनान औपचारिक तौर पर 1944 में आजाद हो गया था।

यमन के उत्तरी हिस्से पर पश्चिमी व दक्षिणी हिस्से पर सोवियत साम्राज्यवादियों का प्रभाव 1990 तक बना रहा। सोवियत संघ के विघटन के बाद यमन का एकीकरण हुआ और वहां साऊदी अरब का दबदबा कायम हो गया।

इस चरण की एक विशेषता यह रही है कि दूसरे विश्वयुद्ध में यद्यपि ब्रिटिश व फ्रांसीसी साम्राज्यवादी अंततः विजेता बनकर उभरे थे परन्तु वे कमजोर हो चुके थे और उनके लिए पश्चिम एशिया में अपना प्रभुत्व कायम रखना संभव नहीं रह गया था। पश्चिम एशिया में यह अरब राष्ट्रवाद के चरम का दौर था। ब्रिटिश व फ्रांसीसी साम्राज्यवाद का स्थान तेजी से अमेरिकी साम्राज्यवाद ने ले लिया।

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद एक समाजवादी खेमा सोवियत संघ के नेतृत्व में सामने आया था जो साम्राज्यवाद को सीधे चुनौती दे रहा था। इसके साथ सोवियत संघ और समाजवाद की प्रेरणा व सहयोग से प्रबल राष्ट्रीय मुक्ति की धारा एशिया, अफ्रीका में बह रही थी। एक के बाद एक देश औपनिवेशिक शासन की जकड़बंदी से मुक्त हो रहे थे। और इस सब का प्रभाव पश्चिम एशिया में पड़ रहा था।

अरब राष्ट्रवाद अपने चरित्र में उपनिवेशवाद विरोधी था। यह पश्चिम एशिया के व्यापक हिस्से को ही नहीं बल्कि अरबी भाषी उ.अफ्रीका के देशों को भी अपने प्रभाव में लिए हुए था। यह अरब राष्ट्रवाद का ही प्रभाव था कि 1958 में मिस्र और सीरिया ने मिलकर संयुक्त अरब गणतंत्र बनाया। किन्तु 1961 में सीरिया में बाथ पार्टी के नेतृत्व में हुए सैन्य तख्ता पलट से यह गणतंत्र आगे नही चल सका। 1963 में मिस्र, सीरिया और इराक ने एक बार फिर संयुक्त अरब गणतंत्र बनाने की असफल कोशिश की। इसके साथ ही अरबों के एक राष्ट्र में संगठित होने की संभावना खत्म हो गयी।

अरब राष्ट्रवाद के निशाने पर इजरायल भी रहा। ऐतिहासिक तौर पर इजरायल का कोई अस्तित्व नहीं था। उसे दूसरे विश्वयुद्ध के बाद विजयी शक्तियों द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ के एक प्रस्ताव के आधार पर फिलीस्तीन के एक हिस्से में बसाया गया था। अरब राष्ट्रवादी अपनी जमीन पर एक यहूदी आबादी वाले राष्ट्र इजरायल को मान्यता देने को तैयार नहीं थे। 1948, 1967,1973 में तीन बड़े युद्धों में अरब राष्ट्रों को इजरायल के हाथ शिकस्त खानी पड़ी। और इसके साथ ही अरब राष्ट्रवाद का दौर बीतने लगा। और इसकी शुरुआत एक तरह से मिस्र के इजरायल को मान्यता देने और उसके साथ सुलह करते हुए 1979 में किये गये शांति समझौते के साथ हुयी। इसके कुछ समय बाद 1994 में जार्डन ने भी इजरायल को मान्यता देते हुए शांति समझौता कर लिया। इजरायल ने मिस्र व जार्डन के कब्जा किये हुए इलाके वापस कर दिये। अन्य अरब राष्ट्र इजरायल को मान्यता नहीं देते हैं। सीरिया की गोलन पहाड़ियां इजरायल के कब्जे में है।

पश्चिम एशिया में इस्लामिक क्रांति से पहले तक इजरायल के रिश्ते ईरान के साथ थे। ईरान की जनता में इजरायल को लेकर आक्रोश था पर शासक रजा पहलवी इजरायल का समर्थक था।

अरब राष्ट्रवाद की बुनियादें आंतरिक और वाह्य दोनों कारणों से कमजोर होती गयीं। पश्चिम एशिया के वे देश जहां शेखशाहियां नहीं थीं वहां काबिज नयी ताकतें शीघ्र ही अपने देशों की जनता के हितों व आकांक्षाओं के खिलाफ चली गयीं। इनका जनाधार जब तेजी से खिसकने लगा तो इन्होंने सैन्य तानाशाही का रास्ता अख्तियार कर लिया। इजरायल के खिलाफ लगातार सैन्य अभियानों ने इनकी अर्थव्यवस्था की कमर तोड़ दी। मिस्र के नासिर अरब राष्ट्रवाद के पुरोधा थे। उनके स्थान पर काबिज अनवर सादात ने पहले वह सब कुछ किया जो नासिर ने किया परन्तु 1973 के युद्ध के बाद उन्हें घुटने टेकने पड़े। कुछ ऐसा ही जॉर्डन, सीरिया व अन्य अरब देशों के साथ हुआ। इजरायल से मिल रही हार के बाद हार ने अरब देशों के शासकों की साख को बहुत नीचे गिरा दिया। इजरायल की ताकत अकेले नहीं थी बल्कि उसके साथ अमेरिकी साम्राज्यवादी थे।

अरब राष्ट्रवाद की जमीन 1956 में सोवियत संघ में हुयी पूंजीवादी पुर्नर्स्थापना क कारण भी कमजोर पड़ी। कालान्तर में सोवियत संघ स्वयं एक साम्राज्यवादी शक्ति बन गया। सोवियत साम्राज्यवादियों के लिए अब पश्चिम एशिया ऐसी जगह बन गया जहां से वे अपने हित साध सकें। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद से शुरू हुआ तथाकथित शीत युद्ध सोवियत संघ के पतन तक चलता रहा। पश्चिम एशिया सोवियत व पश्चिमी साम्राज्यवादियों के बीच इस पूरे काल में पिसता रहा। इजरायल की विजय के पीछे पश्चिमी खासकर अमेरिकी साम्राज्यवादी थे। फिलीस्तीन की मुक्ति की लड़ाई इस बीच में और मुश्किल होती गयी। अरब राष्ट्रवाद की खिसकती जमीन का स्थान तेजी से इस्लामिक कट्टरपंथी समूहों, संगठनों ने लेना शुरू किया। साम्राज्यवादी देशों से लेकर स्थानीय शासकों ने आतंकवादी

समूह, संगठनों को प्रश्रय देना शुरू कर दिया। शिया-सुन्नी का साम्प्रदायिक तनाव पूरे पश्चिम एशिया में फैलने लगा। विभिन्न धार्मिक, कबीलाई समूह अपनी पहचान पर जोर देने लगे।

पश्चिम एशिया के देशों में क्रांतिकारी वामपंथी आंदोलन कभी भी सशक्त नहीं रहा। सोवियत संघ में पुनर्स्थापना के बाद से जिन कम्युनिस्ट पार्टियों का कुछ अस्तित्व भी रहा वे स्थानीय शासकों के समक्ष समर्पण कर चुकी थीं। सोवियत संघ के विघटन के साथ ये पार्टियां अपना वजूद खो बैठीं।

तीसरा चरण : नब्बे के दशक की शुरुआत सोवियत संघ के विघटन के साथ हुई। सोवियत संघ का विघटन का विश्व राजनीति के साथ पश्चिम एशिया की राजनीति पर व्यापक व दूरगामी प्रभाव पड़ा।

सोवियत संघ के विघटन के साथ रूसी साम्राज्यवादी एक दशक से भी ज्यादा समय के लिए नेपथ्य में चले गये। सोवियत संघ में राजकीय पूंजीवाद से खुले -छुट्टे पूंजीवाद का संक्रमण काल लगभग एक दशक तक चला। उसके बाद ही रूसी साम्राज्यवादी इस स्थिति में आये कि वे पुनः अपने हितों के लिए आक्रामक हो सकें। पहले क्रीमिया को रूस में मिलाने और अब सीरिया में उनके तेवरों को देखा जा सकता है।

नक्शा-2 : jkYQ ihVj ekufp=k u;s eè; iwo dk ikt DV

(

SOURCE: MIDDLE EAST AND ASIA GEO POLITICS:SHIFT IN MILITARY ALLIANCES? BY PROF. MICHEL CHOSSUDOVSKY, www.globalresearch.ca)

अपने प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी के नब्बे के दशक में पीछे हट जाने से अमेरिकी साम्राज्यवादियों को पहले से ज्यादा मुखर व आक्रामक होने का मौका दे दिया था। अपनी 'इक्कीसवीं सदी की योजना' के अनुरूप अमेरिकी साम्राज्यवादियों ने अपनी बिसात बिछानी शुरू कर दी। (इस परियोजना के अनुरूप पश्चिम एशिया का एक नक्शा देखें) 'कम्युनिज्म' के पतन के साथ 'विचारधारा के युग' के अंत की घोषणा करने वाले अमेरिकी साम्राज्यवादियों ने अपने एक नये शत्रु 'इस्लामिक आतंकवाद' की घोषणा की। 'सभ्यताओं का संघर्ष' कहकर अमेरिका सहित पश्चिमी साम्राज्यवादी एशिया और अफ्रीका महाद्वीप में हमलावर हो गये। 'इस्लामिक आतंकवाद' से लड़ने के नाम पर आम निर्दोष नागरिक मारे जाने लगे तो इसे 'सहवर्ती नुकसान' की संज्ञा देकर अपने अपराधों का जायज ठहरा दिया गया। "मानवाधिकार का हनन" अपनी विरोधी सत्ताओं से लड़ने का हथियार बन गया। इराक, अफगानिस्तान, लीबिया, सीरिया, सोमालिया, सूडान, यमन आदि देशों में अमेरिकी साम्राज्यवादियों के नेतृत्व व मुख्य भूमिका में पश्चिमी साम्राज्यवादियों ने इसी तरह की बातें करके हस्तक्षेप किया।

बीसवीं सदी का अंत आते-आते अरब राष्ट्रवाद अतीत की वस्तु बनता गया। अरब राष्ट्रों में कोई भी ऐसा शासक नहीं बचा जो कभी भूले-भटके ही सही अरब राष्ट्रवाद की बातें करता हो। अब यह कुछ निम्न पूंजीपति वर्ग के सदस्यों, बुद्धिजीवियों व साहित्यकारों के बीच यदा-कदा सुनाई देने वाला स्वर भर बन कर रह गया। ऐसा नहीं है कि पश्चिम एशिया के देशों में राष्ट्रीय मुक्ति का कार्यभार नहीं बचा है। वहां साम्राज्यवादी आर्थिक नव औपनिवेशिक सम्बन्धों से मुक्ति से लेकर एक राष्ट्र-राज्य के रूप में सामने आने तक का कार्यभार बचा हुआ है। कुर्द और फिलीस्तीनी दशकों से अपनी मुक्ति की लड़ाई लड़ रहे हैं। उन्हें साम्राज्यवाद के अलावा स्थानीय शासकों से लड़ना पड़ रहा है। कुर्दों और फिलीस्तीनियों सहित पश्चिम एशिया के सभी देशों के भीतर मेहनतकशों के लिए साम्राज्यवाद से मुक्ति का सवाल मौजूद है। सीरिया, इराक व यमन तो इस समय सीधे साम्राज्यवाद से मुखातिब हैं। खाड़ी के देशों सहित विभिन्न

देशों में साम्राज्यवादी सैन्य अड्डों के खात्मे का सवाल मौजूद है। ईरान साम्राज्यवादी शक्तियों के द्वारा अपने परमाणु कार्यक्रम को लेकर दबाव व प्रतिबंधों का सामना कर रहा है।

साम्राज्यवाद के हस्तक्षेप के इतर हाल के दशकों में विशेषकर ऐसी क्षेत्रीय ताकतें उभरी हैं जो विस्तारवादी मंसूबे रखती हैं और अपने पड़ोसी देशों के आंतरिक मामले में दखल देने से लेकर ऐसे समूह, संगठनों को प्रश्रय देती हैं जिनमें कट्टरपंथी से लेकर आतंकवादी तक शामिल हैं। तुर्की, ईरान, इजरायल, साऊदी अरब, कतर पश्चिम एशिया में ऐसी क्षेत्रीय ताकतें बनती हैं। इसके अलावा मिस्र भी पश्चिम एशिया में एक सक्रिय ताकत बनता है। हालांकि उसकी सक्रियता हाल के वर्षों में सीमित स्तर की व दोयम दर्जे की है। इराक, सीरिया व लीबिया अपनी पूर्व की प्रभावकारी स्थिति खो चुके हैं। पश्चिमी साम्राज्यवादियों द्वारा इन्हें तबाह और बर्बाद कर दिया गया है।

इराक की तबाही-बर्बादी का दौर 1990 में उसके द्वारा कुवैत पर कब्जे के साथ शुरू हुआ। इराक के शासक सद्दाम हुसैन को इस बात को इल्म नहीं था कि अमेरिकी साम्राज्यवादी जिनके इशारे पर वह कुवैत पर कब्जा कर रहा था, उसे इस तरह धोखा दे देंगे। कुवैत को आजाद कराने के नाम पर उसके देश पर हमला बोल देंगे और कुवैत में जम जायेंगे। पहले कुवैत की आजादी फिर जन संहारक हथियारों के नाम पर अमेरिकी साम्राज्यवादियों के नेतृत्व में पश्चिमी साम्राज्यवादियों ने इराक पर सैन्य हमले जारी रखे। अंततः सद्दाम हुसैन को फांसी पर लटकाने के साथ इराक को वहां पहुंचा दिया गया जहां वह क्षत विक्षत हो चुका था। तेल वे गैस के उसके विशाल भंडारों पर साम्राज्यवादी देशों की तेल कम्पनियों का कब्जा हो चुका था। अमेरिकी साम्राज्यवादी वहां स्थायी सैन्य अड्डा कायम कर चुके थे।

सीरिया, लीबिया व यमन की तबाही-बर्बादी 2017 के "अरब बसंत" के बाद शुरू हुयी। साम्राज्यवादी देश व क्षेत्रीय ताकतें शासकों के खिलाफ फूटे जनाक्रोश का लाभ उठाकर जनता के निशाने पर आये शासकों को सत्ता से बेदखल करने या बनाये रखने के खेल में लग गये। लीबिया, सीरिया, यमन बाहरी व स्थानीय ताकतों के हस्तक्षेप से संचालित युद्ध में फंस गये।

सीरिया व इराक में साम्राज्यवादी देशों खासकर अमेरिकी साम्राज्यवादी तथा आपस में प्रभुत्व के लिए संघर्षरत क्षेत्रीय ताकतों द्वारा पालित-पोषित 'इस्लामिक स्टेट' ने क्रूरता और वीभत्सता के कई कारनाने रच डाले। यह साम्राज्यवादियों की सभ्य क्रूरता (सहवर्ती नुकसान) के जवाब में पनपी असभ्य क्रूरता है। और फिर 'इस्लामिक स्टेट' को खत्म करने के नाम पर साम्राज्यवादियों से लेकर क्षेत्रीय ताकतें सीरिया में जम गयीं।

सीरिया में कुर्दों के सवाल को लेकर तुर्की व अमेरिका हिजबुल्ला (जिसे ईरान का समर्थन है) को लेकर इजरायल व ईरान, असद सरकार के भविष्य को लेकर पश्चिमी साम्राज्यवादी व रूसी साम्राज्यवादी आमने-सामने बने हुए हैं।

ऐसा ही हाल यमन को लेकर है। यहां साऊदी अरब-संयुक्त अरब अमीरात एक तरफ हैं तो दूसरी तरफ ईरान है। अमेरिकी साम्राज्यवादी, साऊदी अरब-संयुक्त अरब अमीरात यमन की 'मान्यता प्राप्त सरकार' के साथ खड़े हैं तो ईरान हूथी (शिया) विद्रोहियों के साथ खड़ा है। साऊदी अरब द्वारा थोपे गये इस युद्ध में हजारों लोग मारे जा चुके हैं।

फारस की खाड़ी के देशों में कतर हाल के वर्षों में एक ऐसे देश के रूप में उभरा है जो क्षेत्रीय ताकतों खासकर साऊदी अरब के प्रभाव को चुनौती दे रहा है। इसके चलते खाड़ी सहयोग परिषद या गल्फ कोआपरेशन काउन्सिल (जी सी टी) में दरार पड़ चुकी है। कतर के उभार ने फारस की खाड़ी के राजनीतिक व सैन्य समीकरणों को बदल दिया है। साऊदी अरब अमेरिकी साम्राज्यवादियों का घनिष्ठ सहयोगी है। कतर के साथ तुर्की, रूस व ईरान खड़े हैं। तुर्की ने कतर में सैन्य अड्डा बनाया हुआ है।

कतर के द्वारा मुस्लिम ब्रदरहुड, हमास और लीबिया में इस्लामिक चरमपंथियों की मदद आदि करने के नाम पर मार्च 2014 में साऊदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात व बहरीन ने अपने राजदूत वापस बुला लिये। जब कतर ने इनकी बातें नहीं मानी तो 5 जून, 2017 से साऊदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात, बहरीन और मिस्र ने राजनायिक सम्बन्ध भंग करके उस पर प्रतिबंध लगा दिये व उसकी नाकेबंदी कर दी। अन्य मांगों के साथ उनकी एक प्रमुख मांग कतर के बहुचर्चित 'अल जजीरा' न्यूज चैनल को बंद करने की भी है। ऐसे में तुर्की, ईरान व रूस कतर के साथ खड़े हो गये। कुवैत तटस्थ बना रहा व सुलह-समझौते के प्रयास में लगा रहा।

पश्चिम एशिया के तेल व गैस उत्पादक देशों के संयुक्त राज्य अमेरिका को होने वाले निर्यात को इस सदी के पहले दशक में शैल तेल व गैस के उत्पादन में आये उछाल ने कम कर दिया। शैल तेल व गैस के उत्पादन में हुयी बढ़ोत्तरी ने संयुक्त राज्य अमेरिका की पश्चिम एशिया व उत्तरी अफ्रीका पर निर्भरता को कम कर दिया है। एक तथ्य के अनुसार वर्ष 2008 से वर्ष 2014 के मध्य संयुक्त राज्य अमेरिका का तेल आयात 50 फीसदी कम हो गया है।

तेल की कीमतों में उतार-चढ़ाव तेल व गैस उत्पादक देशों की अर्थव्यवस्था को गहरे से प्रभावित करते हैं। तेल-गैस की कीमतों में गिरावट राजस्व को घटा देती है जिससे ये देश अपने उत्पादन में घटोत्तरी कर के कीमतों को थामने की कोशिश करते हैं पर यह बहुत कारगर नहीं होता है। इसमें एक बाधा स्वयं तेल उत्पादक देशों के संगठन ओपेक में तालमेल का अभाव भी है। गैर ओपेक तेल-गैस उत्पादक देश उनसे प्रतियोगिता करते रहते हैं।

तेल-गैस की कीमतों में कमी या ठहराव के साथ-साथ क्षेत्रीय तनाव व अन्य कारणों ने खाड़ी के देशों की अर्थव्यवस्था को काफी प्रभावित किया है। अर्थव्यवस्था की बिगड़ी हालत को हम (तालिका -6) में देख आये हैं। 2000-14 के बीच जी सी सी की औसत विकास दर 4.9 प्रतिशत थी जो उसके बाद गिरती चली गयी है। वर्ष 2017 में वह ऋणात्मक दर का शिकार हो गयी।

कुल मिलाकर, इस चरण में पश्चिम एशिया में साम्राज्यवादियों के बीच (खास कर अमेरिकी व रूसी) होड़ फिर से शुरू हो गयी है। होड़ के केन्द्र में तेल व गैस के भंडार, सप्लाई पाइप लाइन के रास्ते, सामुद्रिक व्यापारिक मार्ग, हथियारों के विशाल बाजार, वित्तीय कारोबार आदि हैं। पश्चिम एशिया पूरी दुनिया में ऐसा क्षेत्र बना हुआ है जहां सबसे ज्यादा तनाव है। युद्धों का सिलसिला खत्म नहीं होता है।

पश्चिम एशिया का समकालीन इतिहास साम्राज्यवादी हस्तक्षेप और युद्धों का इतिहास है।

IV

पश्चिम एशिया में मौजूदा हालात के कारण

पश्चिम एशिया में ऐसी तीन ताकतें है जो वहां की आम जनता के पूर्णतः खिलाफ हैं। ये ताकतें हैं : साम्राज्यवादी, क्षेत्रीय विस्तारवादी ताकतें व स्थानीय शासक वर्ग, आतंकी व चरमपंथी हथियारबंद संगठन (इस्लामिक स्टेट, अल कायदा, हिजबुल्ला, हमास इत्यादि)।

आतोमान साम्राज्य के पतन के बाद पश्चिम एशिया में दूसरे विश्वयुद्ध तक ब्रिटिश व फ्रांसीसी साम्राज्यवादी मुख्य ताकत बनते थे। परन्तु दूसरे विश्वयुद्ध के बाद इनका स्थान मुख्य तौर पर अमेरिकी साम्राज्यवादियों ने ले लिया। रूसी साम्राज्यवादी साठ के दशक से 90 के दशक तक सक्रिय रहे और अब वे फिर से सक्रिय हैं। साम्राज्यवाद बनाम पश्चिम एशिया की जनता का अंतर्विरोध बुनियादी अंतर्विरोधों में से एक अंतर्विरोध है। इसी तरह साम्राज्यवादियों के बीच अंतर्विरोध भी यहां मौजूद है और महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है।

तुर्की, ईरान, इजरायल, साऊदी अरब और कतर पश्चिम एशिया की प्रमुख क्षेत्रीय ताकतें हैं। मिस्र की भी एक भूमिका पश्चिम एशिया में रहती है।

मौजूदा स्थिति में अमेरिकी साम्राज्यवाद के साथ मोटे तौर पर ब्रिटिश व फ्रांसीसी साम्राज्यवादी खड़े हैं। (कुछ मामलों को लेकर इनके बीच अंतरर्विरोध भी हैं जैसे फिलीस्तीन के मसले पर वे अमेरिकी साम्राज्यवादियों का साथ नहीं देते हैं) स्थानीय स्तर पर इनका साथ साऊदी अरब व इजरायल देते हैं। साऊदी अरब के साथ संयुक्त अरब अमीरात, बहरीन व मिस्र खड़े हैं। यह एक ब्लॉक बन जाता है।

रूसी साम्राज्यवादी, तुर्की, ईरान, कतर मोटे तौर पर दूसरा ब्लॉक बन जाता है। यह ब्लाक पहले की तरह एक-दूसरे के करीब व एकजुट नहीं हैं। दोनों ही ब्लॉकों के सदस्यों के बीच भी अंतर्विरोध हैं।

तीसरी ताकत के रूप में 'इस्लामिक स्टेट', अलकायदा, हिजबुल्ला, हमास, मुस्लिम ब्रदरहुड, हूथी जैसी संगठित ताकतें हैं। हिजबुल्ला लेबनान में तो हमास फिलीस्तीन के गाजापट्टी में सत्ता में हिस्सेदारी भी करता है। 'इस्लामिक स्टेट' के खात्मे की घोषणा साम्राज्यवादियों के दोनों गुटों द्वारा की गयी है। इसके बावजूद 'इस्लामिक स्टेट' का अस्तित्व सीरिया, इराक व अन्य जगह बना हुआ है। अलकायदा सीरिया व यमन में कुछ उपस्थिति रखता है। 'मुस्लिम ब्रदरहुड' की स्थापना 1928 में मिस्र में हुयी थी। 'मुस्लिम ब्रदरहुड' का प्रभाव अरब देशों में कई जगह है। 2011 के अरब जनविद्रोह की लहर पर सवार होकर 'मुस्लिम ब्रदरहुड' के नेता माहम्मद मुर्सी 2012 में मिस्र के राष्ट्रपति बन गये थे। एक वर्ष बाद सेना ने उन्हें अपदस्थ कर दिया। तुर्की व कतर मुस्लिम ब्रदरहुड का समर्थन करते हैं जबकि मिस्र, साऊदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात, सीरिया, बहरीन और रूस ने उसे आतंकी संगठन घोषित किया हुआ है।

यमन में शिया सम्प्रदाय की एक शाखा जैदी को मानने वाले हूथी विद्रोहियों को जहां ईरान, कतर, सीरिया, ओमान आदि का समर्थन हासिल है वहां साऊदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात व अमेरिकी साम्राज्यवादी यमन में हूथी विद्रोहियों के खिलाफ हमलावर हैं।

कुर्दों के आत्मनिर्णय के अधिकार की लड़ाई लड़ने वाली 'कुर्दिस्तान वर्कर्स पार्टी (पीकेके) पश्चिम एशिया में एकमात्र ऐसा सशस्त्र संगठन है जो मार्क्सवादी विचारों को अपना आधार बनाता है। नाटो, यूरोपीयन यूनियन सहित कई देशों ने पीकेके को आतंकी संगठन घोषित किया हुआ है। स्विट्जरलैण्ड, चीन, रूस, भारत आदि इसे आतंकी संगठन नहीं मानते हैं। सीरिया व इराक में 'इस्लामिक स्टेट' के खिलाफ लड़ाई में पी.के.के. लोहा लेता रहा है। पी.के.के. का तुर्की में अच्छा आधार रहा है। सीरिया में पी.के.के के अपनी सीमाओं में बढ़ते प्रभाव के कारण तुर्की हमलावर है और जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका पी.के.के का सहयोग कर रहा है। पी.के.के. तुर्की के संयुक्त राज्य अमेरिका से अंतर्विरोध का एक अन्य कारण है। कई साम्राज्यवादी देश अपने घृणित हितों व चालों के लिए तुर्की, सीरिया, ईरान, इराक में एक अलग कुर्दिस्तान का समर्थन करते हैं।

फिलीस्तीन को एकीकृत, संप्रभु राष्ट्र के रूप में अस्तित्व में आने देने के इजरायल व अमेरिकी साम्राज्यवादी एक दम खिलाफ हैं।

इस तरह से देखा जाये तो पश्चिम एशिया के आज के हालात के लिए सबसे ज्यादा जिम्मेदार साम्राज्यवादी खासकर अमेरिकी साम्राज्यवादी है। पश्चिम एशिया में तेल व गैस के विशाल भंडार व इसकी सप्लाई के लिए पाइप लाइन का मार्ग (नक्शा -3 देखें) पश्चिम एशिया की व्यापारिक व सामरिक दृष्टि से अति महत्वपूर्ण भू-राजनैतिक स्थिति, साम्राज्यवादी देशों की हथियार कम्पनियों के लिए विशाल बाजार, रियल स्टेट व पर्यटन सहित वित्तीय सेवाओं के बढ़ते कारोबार की जगह आदि वजहों से साम्राज्यवादी देश यहां

अपना हस्तक्षेप बनाए हुए हैं। अपने घृणित हितों व कुत्सित इरादों के लिए वे क्षेत्रीय ताकतों के बीच होड़ को कभी खुले, कभी छिपे ढंग से शह देते रहते हैं। क्षेत्रीय ताकतें भी पश्चिम एशिया के बुरे हालात के लिए जिम्मेदार हैं।

नक्शा-3 : : l o vefjdk lefFkr ik i !k u

स्रोतः वही

पश्चिम एशिया में सक्रिय दो प्रमुख क्षेत्रीय ताकतें तुर्की और इजरायल हैं। इनके बारे में हम पहले चर्चा कर आये हैं कि ये दोनों विकसित देशों के संगठन ओ ई सी डी के सदस्य हैं। तुर्की नाटो का सदस्य है तो इजरायल पश्चिम एशिया में अमेरिकी साम्राज्यवादियों का सबसे विश्वस्त सहयोगी। इजरायल की हैसियत के बारे में यह भी टिप्पणी की जाती है कि वह संयुक्त राज्य अमेरिका का 51वां राज्य है। तुर्की के नाटो के सदस्य होने के बावजूद उसके सम्बन्ध पिछले कुछ वर्षों में अमेरिकी साम्राज्यवादियों से बिगड़े हैं। खासकर एक चरमपंथी इस्लामिक आंदोलन के नेता फतेयुल्लाह गुलेन को अमेरिका में शरण देने और इसके अनुयायियों द्वारा तुर्की की एर्दोगन सरकार के खिलाफ षड्यंत्र रचने की वजह से। एर्दोगन की सरकार ने सेना, सरकारी विभागों, विश्वविद्यालय आदि जगह इनके समर्थकों पर देशद्रोह का मुकदमा लगाते हुए कईयों को जेल में डाल दिया। कई लोगों को गोली से उड़ा दिया। इस मामले के अलावा तुर्की के कुर्दो के सवाल पर अमेरिकी साम्राज्यवादियों से तीखे अंतर्विरोध रहे हैं। इसके बाद वह रूस के कुछ करीब गया है।

इजरायल परमाणु हथियारों से सम्पन्न अघोषित ताकत है। वह अपनी सैन्य ताकत का प्रदर्शन आये दिन करता रहता है। सीरिया के द्वारा लेबनान से अपनी सेना वापस बुलाने के बाद उसे भी लेबनान से पीछे हटना पड़ा है। 2013 में पुनः उसके द्वारा लेबनान में हिजबुल्ला को सबक सिखाने के लिए सेना उतारना उसे भारी पड़ा। सीरिया की वर्तमान बुरी स्थिति में वह हवाई हमले के द्वारा सीरिया, ईरान, हिजबुल्ला की सैन्य क्षमता को लगातार नुकसान पहुंचाता है।

तुर्की व इजरायल का शासक वर्ग घोर प्रतिक्रियावादी शासक वर्ग है। दक्षिणपंथी राजनीति का बोलबाला होने के साथ यह अपने देशों के मजदूर मेहनतकशों के साथ पूरे पश्चिम एशिया की मेहनतकश जनता का दुश्मन बन जाता है। कुर्दों व फिलीस्तीनियों के दमन, उत्पीड़न में इन्होंने कोई कसर नहीं छोड़ी है।

साऊदी अरब के "इस्लामिक क्रांति" से पहले ईरान से ठीक सम्बन्ध थे। आज पश्चिम एशिया में दोनों के शासकों के मध्य सुन्नी बनाम शिया, अरब बनाम फारसी, अमेरिकी साम्राज्यवाद के सहयोगी बनाम विरोधी जैसे अंतर्विरोध मौजूद हैं। दोनों ही 'इस्लामिक दुनिया ' के स्वघोषित नेता हैं। सीरिया, इराक, यमन, लेबनान, बहरीन आदि में अपने हितों के लिए आमने-सामने हैं। अपने-अपने देशों में यहां के शासक घोर प्रतिक्रियावादी शासन चलाते हैं। साऊदी अरब में जनता को कोई जनवादी अधिकार नहीं हैं। साऊदी शेखशाही पश्चिम एशिया में प्रतिक्रियावाद का गढ़ है। इसी तरह ईरान में अंतिम तौर पर सर्वेसर्वा शिया धर्मगुरू खामनी हैं। कहने को वहां संसद आम चुनाव के जरिये चुनी जाती है। राष्ट्रपति का चुनाव भी जनता करती है। किसी ने साऊदी व ईरान के शासकों के इस्लाम को 'राजनीतिक इस्लाम' की ठीक ही संज्ञा दी है। यह इस्लाम शासकों के घृणित हितों की सेवा करता है। ईरान के शासन तंत्र के खिलाफ ईरानी जनता में आक्रोश है जो समय-समय पर फूटता रहता है।

उपरोक्त चार प्रमुख क्षेत्रीय ताकतों के अलावा कतर पश्चिम एशिया में हाल में तेजी से मुखर होती क्षेत्रीय ताकत है। 2011 के अरब जनविद्रोह को उसने अपने प्रभाव को बढ़ाने के लिए राजनीतिक अवसर की तरह देखा। अपने यहां जनविद्रोह न पनपे इसके लिए उसने अपने यहां के सार्वजनिक क्षेत्र के मजदूरों-कर्मचारियों की तनख्वाह में 60 फीसदी और सेना में 120 फीसदी वृद्धि सितम्बर 2011 में कर दी थी। 'अल जजीरा' न्यूज चैनल का इस्तेमाल उसने स्थानीय शासकों के खिलाफ फूटे विद्रोह के समय विद्रोहियों के पक्ष में इस ढंग से किया ताकि उसके हित सध सकें। इसने उस तनाव की नींव रखी जो इस वक्त उसका साऊदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात, बहरीन व मिस्र से चल रहा है। कतर के शासकों ने मुस्लिम ब्रदरहुड से लेकर हमास का समर्थन किया। कतर के बढ़ते प्रभाव के पीछे उसकी प्राकृतिक गैस की ताकत है। उसके पास रूस व ईरान के बाद दुनिया में सबसे बड़ा गैस भंडार है। कतर ने नब्बे के दशक में

एशिया व अफ्रीका में विभिन्न संघर्षरत पक्षों (दार्फुर, इथियोपिया-इरीट्रिया, लेबनान, इजरायल-फिलीस्तीन, यमन, पश्चिमी सहारा, सोमालिया आदि) में वार्ताकार की भूमिका निभायी थी परन्तु आज वह इस भूमिका से आगे बढ़कर पश्चिम एशिया में प्रमुख शक्ति बनना चाहता है। और अपनी विफलताओं के बावजूद (मिस्र, सीरिया, यमन में) वह ऐसा ही चाहता है। कतर ने साऊदी अरब के खाड़ी देशों पर वर्चस्व को कड़ी चुनौती दी है। जीसीसी का अस्तित्व खतरे में है।

साम्राज्यवादी देशों की तरह ये क्षेत्रीय ताकतें भी पश्चिम एशिया की मेहनतकश जनता की दुश्मन हैं। ये प्रतिक्रियावाद की जनक व रक्षक हैं। ये धर्म का इस्तेमाल एक धारदार हथियार की तरह करते हैं। इस हथियार से वे देश के भीतर व बाहर घातक ढंग से प्रहार करते हैं।

धर्म का एक राजनीतिक हथियार की तरह इस्तेमाल पश्चिम एशिया के सभी शासक करते हैं। यहां के सभी शासक अपने शासन की उम्र लम्बी खींचने के लिए इसका इस्तेमाल करते हैं। धार्मिक कूपमंडूकता उनके लिए फायदे का सौदा है। धर्म का इस्तेमाल वर्ग संघर्ष की धार को कुन्द करने में कारगर होता है।

जैसा कि हम चर्चा कर चुके हैं कि पश्चिम एशिया से बड़े तेल आयातक व व्यापारिक साझेदार देशों में चीन, भारत, जापान, दक्षिण कोरिया आदि देश हैं। इन देशों में चीन, पश्चिम एशिया के कई देशों को प्रमुख रूप से अपना माल निर्यात करता है। वह सबसे बड़ा व्यापारिक साझेदार है। चीन अपनी हैसियत के अनुरूप पश्चिम एशिया में हस्तक्षेप अभी तक नहीं करता रहा है। परन्तु अब शी जिंगपिंग ने चीन की किसी देश के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने की नीति में बदलाव शुरू कर दिये हैं। हिंद महासागर में वह एक प्रमुख नौसैनिक शक्ति के रूप में सामने आ चुका है। और ऐसे में संभव नहीं है कि चीन भविष्य में पश्चिम एशिया में होने वाली उथल-पुथल में हस्तक्षेप न करे या दूर रहे।

पश्चिम एशिया के तेल-गैस उत्पादक देशों की कीमत व उत्पादन को नियंत्रित करने की नीति पर लगाम लगाने के लिए चीन भारत, जापान, दक्षिण कोरिया व अन्य तेल-गैस आयातक देशों का एक ग्रुप बनाना चाहता है। यह ग्रुप बनाकर वह बेहतर सौदेबाजी अपनी शर्तों पर करना चाहता है। यह ग्रुप अभी बनने की प्रक्रिया में है। ऐसा हो जाने पर वह पश्चिम एशिया में असैनिक ढंग से हस्तक्षेप करने लगेगा।

2011 के अरब जनविद्रोह ने दशकों से काबिज कई तानाशाहों को सत्ता छोड़ने को मजबूर कर दिया था। उत्तरी अफ्रीका सहित पश्चिम एशिया का कोई देश ऐसा नहीं था जहां इसकी अनुगूंज नहीं सुनी गयी। तुर्की, इजरायल भी इसके अपवाद नहीं थे। इसके शासकों को उसने भविष्य की एक झलक दिखला दी थी।

इस जन विद्रोह का साम्राज्यवादियों, क्षेत्रीय ताकतों व स्थानीय शासकों ने अपने-अपने ढंग से सबक निकाला। और जिनके खिलाफ यह विद्रोह सीधे लक्षित नहीं था उन्होंने इस मौके का फायदा, अपने हितों को साधने के लिए, उठाने की काशिश की। सीरिया, इराक, यमन इसके उदाहरण बन कर उभरे जहां साम्राज्यवादी व क्षेत्रीय ताकतें सक्रिय हो गयीं।

जनविद्रोह क्रांति में तब्दील न हो जाये इसके लिए सभी प्रतिक्रियावादी ताकतों ने अपना पूरा जोर लगा दिया था। अरब जनविद्रोह क्रांति में न तब्दील होने देने में प्रतिक्रियावादी ताकतों के दमन और षड्यंत्र के साथ यह भी सच है कि जनता को नेतृत्व व संगठित करने वाली क्रांतिकारी ताकत यानी मजदूर वर्ग की पार्टी कम्युनिस्ट पार्टी भी मौजूद नहीं थी। मिस्र में मजदूर वर्ग बगैर अपनी पार्टी के उतना ही लड़ सकता था जितना वह लड़ा। पश्चिम एशिया के अन्य देश जहां विद्रोह फूटा वहां मजदूर वर्ग उतना भी एकजुट नहीं था जितना मिस्र में था। इस जनविद्रोह की असफलता के बाद प्रतिक्रियावाद की नयी लहर आ गयी। 'इस्लामिक स्टेट' का विकास और फिर उसके विनाश में साम्राज्यवादी और क्षेत्रीय ताकतों ने अपने लिए
स्वर्णिम अवसर देखा। और इस सबका नतीजा आज के क्षत-विक्षत पश्चिम एशिया के देश सीरिया व इराक हैं।

V

चुनौतियां और भविष्य

आज पश्चिम एशिया में तीन बुनियादी अंतर्विरोध काम कर रहे हैं :

(1) साम्राज्यवाद बनाम पश्चिम एशिया की जनता

(2) साम्राज्यवादी शक्तियों का आपसी अंतर्विरोध

(3) पूंजी बनाम श्रम का अंतरर्विरोध

इन तीन बुनियादी अंतरर्विराधों के बाद सबसे प्रमुख अंतरर्विरोध में क्षेत्रीय विस्तारवादी ताकतों का आपसी अंतरर्विरोध बनता है। यह अंतरर्विरोध मूलतः उपरोक्त तीनों बुनियादी अंतरर्विरोधों के समीकरण से संचालित होता है।

पश्चिम एशिया के विभिन्न देशों में इन बुनियादी अंतरर्विरोधों में से प्रधान अंतरर्विरोध अलग-अलग देशों में अलग-अलग हैं। जैसे तुर्की, इजरायल, ईरान आदि में पूंजी और श्रम का अंतरर्विरोध प्रधान अंतरर्विरोध है। सीरिया, इराक में साम्राज्यवाद बनाम जनता का अंतरर्विरोध प्रधान अंतर्विरोध बनता है।

'सामान्य परिचय' में हम देख आये हैं कि पश्चिम एशिया में शहरीकरण बहुत ऊंचे स्तर का है। यमन और सीरिया ही इसके अपवाद हैं। हालांकि सीरिया में भी करीब साठ फीसदी आबादी शहरों में रहती हैं। इसका अर्थ यह है कि पश्चिम एशिया के देशों में जनविद्रोह के केन्द्र शहर होंगे। 2011 के अरब जन विद्रोह में इसकी एक झलक मिल भी गयी। इस वक्त सीरिया व यमन में जो युद्ध चल रहे हैं उसके केन्द्र में भी शहर ही हैं दमिश्क, अलेप्पो, होम, सना,अदन आदि इसकी बानगी हैं। यही बात इराक बगदाद में अमेरिकी हमले पर तथा अभी 'इस्लामिक स्टेट' के खिलाफ चली लड़ाई में मोसुल शहर पर भी लागू होती है।

घनी और विशाल आबादी वाले शहर आज के विद्रोह व संघर्षों के केन्द्र हैं। यही बात भविष्य में फूटने वाले वर्ग संघर्षों या साम्राज्यवादी के खिलाफ लड़ाई के लिए भी सच है।

'सामान्य परिचय' में हम देख आये हैं कि बहरीन, कुवैत, ओमान, संयुक्त अरब अमीरात, साऊदी अरब जैसे खाड़ी देशों में बाहरी मजदूरों की संख्या बहुत-बहुत ज्यादा है। ऐसे में यह संभव नहीं है कि इन देशों में कल को कोई सामाजिक विस्फोट हो और यह लाखों की आबादी मूकदर्शक बनी रहे। बहुत दिन से इन शेखशाहियों ने स्थानीय और बाहरी मजदूरों-मेहनतकशों के विभाजन का इस्तेमाल कारगर ढंग से किया है। स्थानीय आबादी को मिलने वाले आर्थिक-सामाजिक लाभ से बाहरी मजदूर वंचित हैं परन्तु 2011 के जनविद्रोह ने दिखलाया कि इन शेखशाहियों के खिलाफ स्थानीय आबादी में आक्रोश किस हद तक संचित है। बेरोजगारी, असमानता, जनवाद का अभाव, शेखों की शान-शौकत व फिजूल खर्ची, भ्रष्टाचार, स्थानीय क्षेत्रीय तनाव आदि ऐसे कारण हैं जो स्थानीय आबादी में संचित सामाजिक आक्रोश को विस्फोटक बना सकते हैं। बाहरी आबादी की स्थिति बंधुआ मजदूरों की है। भविष्य में इन देशों में बाहरी आबादी और स्थानीय आबादी का भेद धूमिल होकर 'पेरिस कम्यून' मार्का समाजवादी क्रांति का रूप प्रदर्शित कर सकता है।

पश्चिम एशिया में जिस पैमाने पर साम्राज्यवादियों और क्षेत्रीय ताकतों के आपसी अंतरर्विरोध कार्यरत हैं उस स्थिति में इस पूरे इलाके में युद्धों का खतरा बना ही रहना है। सीरिया, इराक और यमन जैसी स्थिति का विस्तार बड़े पैमाने पर हो सकता है। जैसा कि हम पहले चर्चा कर आये हैं कि मोटे तौर पर दो ब्लाक इस समय मौजूद हैं। जिसमें एक तरफ अमेरिकी साम्राज्यवादी और दूसरी तरफ रूसी साम्राज्यवादी हैं। अभी पहला ब्लॉक प्रभावी और शक्तिशाली है। भविष्य में ये या फिर क्षेत्रीय ताकतें छोटे या बड़े युद्धों में उलझ सकती हैं। हर कोई युद्ध की तैयारी में लगा है। बहुत बड़ी रकम हथियारों की खरीद में खर्च हो रही है। बड़े-बड़े सैनिक अड्डे पूरे पश्चिम एशिया में हैं। फारस की खाड़ी, लाल सागर, भूमध्य सागर नौ सैनिक पोतों से भरा पड़ा है। कोई भी छोटा-बड़ा तनाव पश्चिम एशिया को युद्ध के मैदान में बदल सकता है। इस तरह के युद्धों में जितनी बर्बादी अभी तक पश्चिम एशिया में हो चुकी है उससे कम नहीं होगी। और इसमें कोई बड़ी बात नहीं होगी कि जनक्रांति की कोई लहर इन युद्धों को बीच में ही रोक सकती है। या फिर युद्धों के बाद यह लहर पश्चिम एशिया में छा जाये और उस पूरी गन्दगी को एक झटके में साफ कर दे जो इस वक्त पूरे पश्चिम एशिया में पसरी हुयी है।

यह बात निश्चित है कि अब पश्चिम एशिया में नये भविष्य के सूत्रधार सिर्फ और सिर्फ मजदूर होंगे। निम्न बुर्जुआ वर्ग ने अपना शीर्ष अरब राष्ट्रवाद के रूप में पा लिया। उसके बाद तो वह शासक वर्ग के हाथ का खिलौना ही रहा है। मजदूर वर्ग की जागृति, क्रांतिकारी संगठन और हस्तक्षेप की कहानी जब पश्चिम एशिया में लिखी जायेगी तब निम्न पूंजीपति वर्ग अपनी मूर्खता, कूपमंडूकता, लक्ष्यविहीनता, भविष्यहीनता से मुक्ति पा सकेगा। और जब तक ऐसा नहीं होगा तब तक वह कभी मुल्लों, कभी शासकों, कभी साम्राज्यवादियों, कभी उनके एन.जी.ओ., कभी उनके द्वारा प्रायोजित आंदोलन या रंगीन क्रांतियों के हाथ का खिलौना बना रहेगा।

कुर्दों व फिलीस्तिनियों की राष्ट्रीय मुक्ति का कार्यभार तभी ठीक ढंग से पूरा हो सकता है जब पूरे पश्चिम एशिया में जनक्रांति की कोई लहर उठे और प्रतिक्रियावादी तत्वों का ढंग से सफाया करे। इसके बिना उनकी लम्बी लड़ाई और लम्बी ही चलेगी।

■■■